THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182557
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H333 M67B Accession No. PG-H6298

Author मिश्र, बाबूराम

Title भूदान का आर्थिक आधार 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below

मनोरंजन पुस्तकमाला—५५

भूदान का आर्थिक आधार

लेखक
डा० बाबूराम मिश्र

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताबराय, नागरी मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण, सं० २०१४, २००० प्रतियाँ
मूल्य ३)

समर्पण

विहार के मुख्य मंत्री

डॉ० श्रीकृष्णसिंह को

देश के उन्नयन और विकास में

उनकी अमूल्य सेवाओं के लिये।

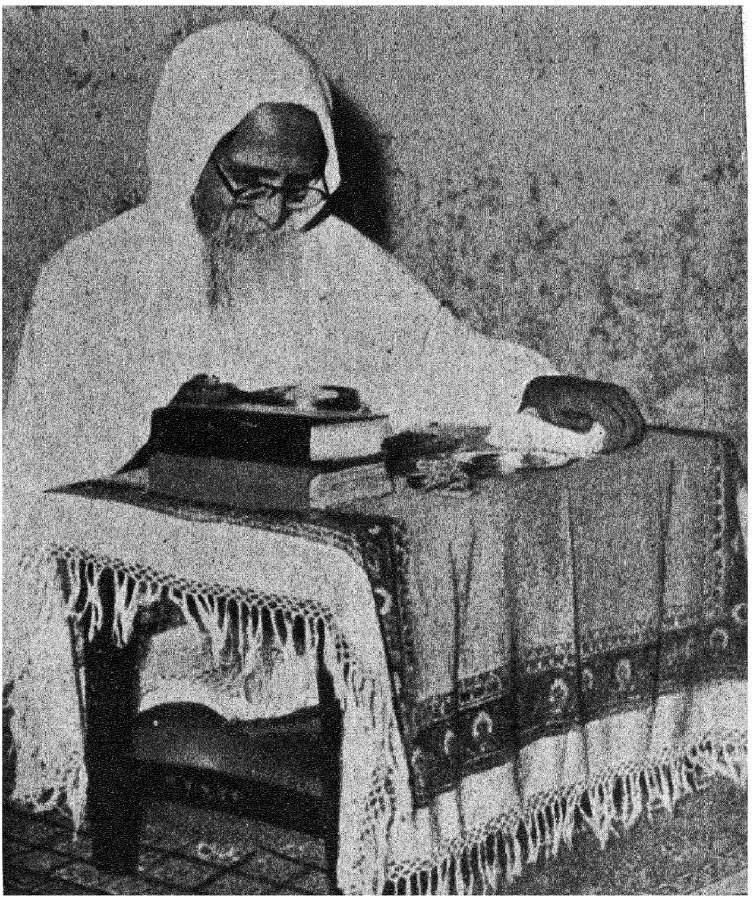

आचार्य विनोबा भावे

भूमिका

इस छोटी पोथी में भारतीय कृषि-अर्थशास्त्र के संदर्भ में भूदान आंदोलन के महत्त्व की परीक्षा करने की चेष्टा की गई है। १९५७ से पूर्व का रूस भी भारत से विशेष भिन्न न था[1]। उस समय वहाँ भी कृषि आदिम अवस्था में थी। अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती थी और कृषि-उत्पादन अल्प था। १९५७ के पश्चात् रूस का आर्थिक विकास हुआ है; वह भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व के विनाश से प्रारंभ होकर सामूहिक खेती के कई परिच्छेदों से होकर गुजरा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ के अवसर पर भारत में आर्थिक अवस्था का जो चित्र था, उसमें अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी; मानव शक्ति और उत्पादन में अनुपात बड़ा अल्प था। वह जमींदारी-प्रधान अर्थव्यवस्था थी। जमींदारी-उन्मूलन से प्रगति का प्रथम चरण पूरा कर लिया गया है। राष्ट्र ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के ढाँचे को स्वीकार कर लिया है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की सिद्धि में भूदान मुख्य आर्थिक साधन के रूप में है।

युद्ध ही नहीं, शांतिकाल में भी इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। भूदान आंदोलन रूसी कृषि-अर्थव्यवस्था के इतिहास की भारत में पुनरावृत्ति रोकने के लिये सशक्त ढाल है।

भूमि के यथोचित वितरण की समस्या अंतर्राष्ट्रीय है। यह हमें बतलाता है किस प्रकार अविकसित देशों में जहाँ, आर्थिक साधन दुर्बल हैं, शांतिपूर्ण उपायों से भूमि का पुनर्वितरण हो सकता है।

भूदान आंदोलन का महत्व कितना अधिक है यह इसी से विदित होगा कि भारत में अमेरिका के भूतपूर्व राजदूत श्री चेस्टर बाउल्स ने राज्यों में भूदान-कोश की स्थापना की है।

मैंने इस आंदोलन को अर्थशास्त्री की दृष्टि से देखा है। आशा है कि इस पोथी में जो विवरण उपस्थित किया गया है उससे एक सामान्य

१. मॉरिस दोव, सोवियत इकॉनामिक डिवेलपमेंट सिंस १९१७, लंदन, १९४९ रटलेज ऐंड कगेन पाल, पृ० ११

पाठक की, जो विनोबा और भूदान-यज्ञ के संबंध में जानना चाहता है, उत्सुकता की यत्किंचित् तृप्ति होगी। मैं यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि इस संबंध में पुस्तक के दसवें अध्याय में मैंने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे मेरे अपने हैं। विनोबा जी चाहते हैं कि किसान-परिवार कृषि की विभिन्न अवस्थाओं में, यथा जोतना, फसल काटना, सिंचाई और विक्रय आदि में, पारस्परिक सहकारिता से कार्य करे। संभवतः कृषि के अलाभकर जोत के क्षेत्रों को एकत्र कर देने के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर खेती करने की ओर विनोबा जी की दृष्टि नहीं है। भूदान आंदोलन अंततोगत्वा भारत में सामूहिक कृषि का मार्ग प्रशस्त करेगा।

मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री श्री श्रीमन्नारायण के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। उन्होंने कष्ट करके पुस्तक की पांडुलिपि देखी और कुछ बहुमूल्य सुझाव भी दिए। इस पुस्तक के प्राक्कथन के लिये भी मैं उनका विशेष रूप से ऋणी हूँ। इस पुस्तक में जो चित्र दिए गए हैं उनकी प्राप्ति के लिये भी मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैं परराष्ट्र विभाग की संसदीय सचिव श्रीमती लक्ष्मी मेनन का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तक की पांडुलिपि पढ़कर मुझे बहुमूल्य सुझाव दिए।

मैंने विनोबा जी के कुछ व्याख्यानों का पुस्तक में उपयोग किया है। तदर्थ अखिल भारत सर्वोदय सेवा संघ का भी ऋणी हूँ, जिसने निम्नलिखित पुस्तकों के उपयोग की अनुमति दी :

(१) विनोबा भावे कृत भूदान यज्ञ
(२) सुरेश रामभाई कृत विनोबा ऐंड हिज मिशन

नवजीवन ट्रस्ट ने महात्मा गांधी के लेखों से उद्धरण लेने की जो अनुमति दी है तदर्थ ट्रस्ट को धन्यवाद है।

पटना विश्वविद्यालय,
१५ मार्च, १९५७

बाबूराम मिश्र

दो शब्द

आचार्य विनोबा द्वारा संचालित भूदान-यज्ञ मूलतः एक नैतिक और आध्यात्मिक आंदोलन है। आज की दुनिया में जब धनसंग्रह और स्वार्थ-परायणता ही जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गई है, आचार्य विनोबा का भूदान-संपत्तिदान आंदोलन हमें त्याग और परमार्थ का मार्ग दिखाता है और समझाता है कि रोटी, धन और जमीन बाँटकर खाने और उपयोग करने में ही जीवन की सार्थकता है।

किंतु हमें यह भी समझ लेना जरूरी है कि भूदान यज्ञ केवल एक नैतिक प्रक्रिया नहीं है। यह आंदोलन एक संपूर्ण अर्थशास्त्र भी है जिसके द्वारा भारत में और अन्य देशों में भी भूमि की समस्या सफलतापूर्वक हल की जा सकती है। इस अर्थशास्त्र में न प्रश्न है कानून बनाने का और न मुआवजे का। यह हृदयपरिवर्तन का एक जरिया है जिसके द्वारा जमीन भी बँट जाती है और साथ ही साथ प्रेम, सहकार्य एवं सद्भावना का संचार भी हो जाता है। भूदान-यज्ञ ने दुनिया को अहिंसा द्वारा एक जटिल आर्थिक समस्या का स्थायी हल दिखाया है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि इस आंदोलन की ओर दुनिया के बहुत से देशों की निगाहें लग रही हैं। विदेशों से काफी विचारक और समाजसेवक भारत आकर इस आंदोलन का अर्थशास्त्र और रहस्य समझने की कोशिश कर रहे हैं।

डा० बाबूराम मिश्र ने इस भूदान आंदोलन का अर्थशास्त्र आँकड़ों सहित विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक अपने ढंग की पहली ही है। हम डा० मिश्र को इस कार्य के लिये हार्दिक बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिंदीजगत् इसका यथोचित स्वागत करेगा।

नई दिल्ली
११-२-१९५७

श्रीमन्नारायण

अनुक्रमणिका

१—अवरुद्ध आर्थिक विकास १

२—विनोबा कौन हैं ? ६

३—मुझे कम्युनिस्ट होना सिखाओ १२

४—भूमि का एक छोटा सा टुकड़ा १५

५—कम्युनिज्म से विनोबा को प्रकाश मिलता है १९

६—जीविका का चित्र २३

७—भूदान आंदोलन ३०

८—जनसंख्या और खाद्यपूर्ति ४३

९—नई समाज-व्यवस्था ५४

१०—भावी कृषि का ढाँचा ५९

भूदान का अर्थशास्त्र

प्रथम अध्याय

अवरुद्ध आर्थिक विकास

जब हम भारतवर्ष में पिछले दस वर्षों में हुए राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो उनकी नवीनता और उनका परिणाम हमारी आँखें खोल देता है। कहा नहीं जा सकता कि पिछले किसी युग में किसी देश में इतने अल्प समय में इतने महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। १९४७ में ब्रिटिश राज्य का अंत हुआ। पुरानी देशी रियासतें, जो कई शताब्दियों से वर्तमान थी—उनमें कुछ तो ऐसी भी थीं जिन्होंने प्रत्येक विदेशी आक्रामक से मोर्चा लिया था—भारतीय संघ में विलीन हो गईं। फिर युगों की संस्था जमींदारी, जो ब्रिटिश शासन का आधार थी, समाप्त हो गई। ये सभी परिवर्तन, जिन्होंने संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन में आमूल परिवर्तन कर दिया अहिंसक और शांतिपूर्ण उपायों से घटित हुए। इतिहास किसी भी देश में ऐसी कोई समानांतर घटना उपस्थित नहीं करता, जहाँ ऐसे परिवर्तन बिना रक्तपात के इस प्रकार शांतिपूर्ण ढंग से हुए हों। रूसी क्रांति ने, जिसने जारशाही का अंत किया, राष्ट्र के संपूर्ण जीवन को तितर बितर कर दिया। इस संबंध में भारतवर्ष विश्व के लिये आदर्श उपस्थित करता है कि किस प्रकार अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन भी शांतिपूर्ण रीति से किए जा सकते हैं।

किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि ये परिवर्तन युगों की उपज हैं। ये राष्ट्र की उस इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो चुपचाप एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहती थी, जिसे यहाँ या कहीं कोई सोच भी नहीं सकता था। ब्रिटिश राज का अंत अहिंसा से हुआ। राष्ट्र की इसी इच्छा ने राजे-रजवाड़ों को बतला दिया कि अब उनका युग समाप्त हो गया; अब नए भारत की नई रीतियाँ होंगी। राजाओं ने इस आवश्यकता का अनुभव किया और उन्होंने स्वेच्छा से अपने अधिकार छोड़ दिए जिसमें एक सुदृढ़ भारतीय संघ के निर्माण में सुविधा हो सके।

भूदान आंदोलन

भूदान आंदोलन, जिसका अध्ययन हम यहाँ उपस्थित करने जा रहे हैं, देश की भूमिसंबंधी समस्याओं को अहिंसात्मक और शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की दिशा में एक प्रयोग है। इसमें धनी, निर्धन, युवा, वृद्ध सभी स्वेच्छा से भूमि का दान करते हैं जिसे, भूमिहीनों में बाँट दिया जाता है। भूदान आंदोलन का हमारे युग में दो विशेष कारणों से महत्व है। प्रथम तो यह इतिहास में पहला दृष्टांत उपस्थित करता है जब किसी राज्य में, जहाँ भूमिपतियों का ही बोलबाला रहा है, वे शांतिपूर्ण ढंग से बिना किसी मुआवजे के स्वेच्छया भूमि पर से अपना स्वामित्व छोड़ दें। आंदोलन का आकर्षण मात्र इसी से बढ़ जाता है। अर्थशास्त्रियों के लिये और हमारे युगों के अर्थशास्त्री इतिहासकारों के लिये, यह आकर्षण कम से कम उतना ही बड़ा है जितना रूसी क्रांति का। दूसरे यह एक अकेला उदाहरण उपस्थित करता है जब स्वेच्छा से भूदान के द्वारा एक ऐसी भावना का उदय होता है, जिससे स्वामित्व की भावना का विनाश किया जा सके और एक अविकसित देश अभूतपूर्व उत्साह से अपनी आर्थिक व्यवस्था में तेजी से परिवर्तन करने की ओर अग्रसर हो और यह परिवर्तन भी बिना किसी पूंजी की सहायता से हो जिसकी सामान्यतया मुआवजे की अदायगी में आवश्यकता होती है। इस प्रकार विनोबा का भूदान आंदोलन एशिया के देशों की भूमि संबंधी नीति - निर्देश की दिशा में एक श्रेष्ठ उदाहरण बनेगा।

भारतवर्ष के आर्थिक विकास के अवरोध का मुख्य कारण यहाँ की भूमि-व्यवस्था थी। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल बाद से ही देश की संपूर्ण भूमि-व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब पिछले कुछ वर्षों में भारतीय भूमि व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तो फिर भूदान आंदोलन की आवश्यकता क्या थी? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रकार के परिवर्तनों का एक संक्षिप्त लेखाजोखा उपस्थित किया जाय और यह बतलाया जाय कि भूदान आंदोलन की प्रवृत्ति और राज्य सरकारों द्वारा पास किए गए कानूनों में क्या अंतर है?

सामंतवाद और भूमिसुधार

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जमींदारी के उन्मूलन की आवश्यकता पड़ी क्योंकि ऐसी कोई सामंतवादी भूमिव्यवस्था हमारे देश के संविधान के अंतर्गत

जीवित नहीं रह सकती, जिसमें राज्य देश की आर्थिक व्यवस्था का संचालन इस रूप में करता है कि उत्पादन के साधन जनता के हितों के विरुद्ध थोड़े से लोगों के हाथ में जमा न हो जायँ। सामंतवादी भूमिव्यवस्था देश की करोड़ों मेहनतकश जनता के हितों के विरुद्ध पड़ती थी। ब्रिटिश शासन के अंत के समय का भारतीय ग्राम अपनी चालढाल और दृष्टिकोण में मध्यकालीन ही था। भारतीय आर्थिक जीवन के एक सतर्क पर्यवेक्षक ने ठीक ही कहा था कि भारत के संबंध में कोई निर्णय उसके विशाल बंदरगाहों और औद्योगिक क्षेत्रों को देखकर नहीं करना चाहिए। ये औद्योगिक क्षेत्र तो अद्भुत कालगणना के भ्रम से पूर्ण आधुनिक और मध्ययुगीन की सीधी टक्कर के दृश्य उपस्थित करते हैं। सामंतवाद देश के विभिन्न भागों में था। जमींदारों का प्रभाव वे सभी जानते हैं जो ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था से परिचित हैं। किसानों के प्रति भूमिपतियों का व्यवहार सहृदयतापूर्ण होने की बात कौन कहे, केवल अधिक से अधिक लगान वसूल करना और उनका शोषण करना ही था। इससे सरकार किसानों की ओर से हस्तक्षेप करने के लिये बाध्य हो गई। फलस्वरूप कई प्रांतों में १९३९ में ही, जब कांग्रेस की सरकारें बन गई थीं, भूमिसुधार के बहुत से कानून बने थे किंतु इन कानूनों से किसानों को विशेष संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि पैसेवाले अपने विरोधी कानून की बारीकियों का सहारा लेकर प्रायः कानून के उद्देश्य को ही नष्ट कर देते थे। इस प्रकार सामंतवाद ने सरकार द्वारा निर्धन किसानों की सहायता के कार्य को बड़ा कठिन बना दिया था। अतः जमींदारी के विनाश की आवश्यकता आ पड़ी।

इसके अतिरिक्त देश में मध्ययुगीन भूमिव्यवस्था के प्रचलित रहते खाद्योत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कभी संभव न थी क्योंकि कृषि में वैज्ञानिक सुधार और सहयोग कृषि का उत्पादन बढ़ाने की दिशा में तभी प्रगति कर सकते हैं, जब भूमि इस योग्य हो जाय कि कृषिव्यवस्था को सुचारु रूप से चलाया जा सके।

भूमिसुधार की नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(१) उत्तम भूमिप्रबंध की व्यवस्था के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि, (२) सुविधा और आमदनी की असमानता में कमी, (३) किसानों की

[1] देखिए वीरा एन्स्टे: इकनामिक डेवलपमेंट आफ् इंडिया, लंदन, १९४९, पृ० १।

सुरक्षा की व्यवस्था जिसमें ऐसा अवसर भी शामिल है, कि वह अपनी जोत की भूमि का स्वामी बन सके, (४) खेतिहर मजदूर की स्थिति में सुधार और (५) सामान्यतया सुधारों के माध्यम से भूमिव्यवस्था में परिवर्तन के द्वारा किसानों के संमुख प्रगतिशील आर्थिक आमदनी उपस्थित करना।

उपर्युक्त भूमिसुधार की नीति के उद्देश्य यद्यपि अपने में अच्छे हैं, तथापि वे समस्या के उस भाग तक नहीं पहुँचते जो भूदान आंदोलन का उद्देश्य है अर्थात् स्वेच्छादान के द्वारा शांतिपूर्ण उपायों से प्राप्त भूमि का समान बँटवारा। यह उद्देश्य किसी भी कानून से पूरा नहीं हो सकता। इसके लिये जनता की मानसिक स्थिति में परिवर्तन होना आवश्यक है, जिससे वह भूमि के प्रश्न पर एकदम दूसरे ही दृष्टिकोण से विचार करे।

इसके अतिरिक्त सभी भूमिसुधार राज्य के द्वारा लादे हुए हैं। वे भूदान आंदोलन की प्रवृत्ति पर आधृत नहीं हैं। अनुभव करने की बात यह है कि कोई भी भूमिसुधार जनता में वैसी क्रांति और संभावना नहीं पैदा कर सकता जो भूदान आंदोलन से आती है। विनोबा भूमि में व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति के द्वारा भूमि के समाजीकरण का उद्देश्य रखते हैं। विनोबा ने अपने भाषण में बड़े धड़ल्ले से कहा: 'भला हो आपका! जमीन न आपकी है और न मेरी। जो खेत पर काम करेगा वही इसका फल पाएगा।'

भूमि-समस्या के विनाबा के हल की जड़ आध्यात्मिक भूतकाल में है, और यही मौलिक अंतर है भूदान आंदोलन और सरकार द्वारा पास कानूनों में। स्वयं विनोबा ने भूदान आंदोलन के सच्चे महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया है।

भूदान कार्यक्रम, जैसा कि लोग कहते हैं, उस पचड़ का एक पतला सा कोना है, जिसे हम पुरानी व्यवस्था में प्रविष्ट करना चाहते हैं। हम जनता को धन और सांसारिक वस्तुओं के राग से मुक्त करना चाहते हैं। भूदान आंदोलन एक लंबे और विस्तृत आयोजन का प्रारंभ है। हमारा अंतिम उद्देश्य भूमि को एकदम मुक्त करना है। भूमि पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व न हो, यहाँ तक कि राष्ट्रीय स्वामित्व भी नहीं। हम न तो इस राष्ट्र के हैं और न उस राष्ट्र के, बल्कि संपूर्ण विश्व के हैं। वायु, जल, प्रकाश और भूमि भगवान की साक्षात् देन है। इसका स्वामित्व संपूर्ण मानवता में निहित होना चाहिए।

भारतीय आर्थिक जीवन संप्रति एक क्रांतिकारी परिवर्तन के बीच से होकर गुजर रहा है। पुरानी सामाजिक व्यवस्था का स्थान नई सामाजिक व्यवस्था ले रही है। समाज एक ऐसे संक्रांति युग से गुजरा है जिसमें अभी कल तक सामंतवाद के लक्षण वर्तमान थे। नवीन सामाजिक व्यवस्था में अवरुद्ध आर्थिक विकास के लक्षण तेजी से दूर हो रहे हैं। नई आर्थिक नीति समाजवादी ढाँचे के समाज के निर्माण की भावना से प्रभावित हैं। भूदान आंदोलन का महत्व इसी संदर्भ में देखना है।

द्वितीय अध्याय

विनोबा कौन हैं ?

आचार्य विनोबा भावे के जीवन के संबंध में बहुत ही कम लिखा गया है। यदि कभी उनकी जीवनी लिखी जाय तो अच्छा तो यह हो कि विनोबा जी स्वयं लिखें। बंबई राज्य के कोलाबा जिले में १८९५ ई० की ११ वीं सितंबर को एक महाराष्ट्र ब्राह्मण परिवार में विनोबा जी का जन्म हुआ। इनकी माता श्रीमती रुक्मिणी देवी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं, जिनका अधिकांश समय पूजापाठ में ही व्यतीत होता था। पिता श्री नरहर शंभुराव भावे बड़े सच्चरित्र और विनयशील व्यक्ति थे। वे सूती वस्त्रनिर्माण के विशेषज्ञ थे। विनोबा के बचपन का अधिकांश काल बड़ौदा राज्य में बीता। इनके पाँच भाई और बहनें थीं। दो भाई बालकोबा और शिवाजी अभी जीवित हैं। इन दोनों भाइयों ने भी सांसारिक सुखों का परित्याग कर सेवा का व्रत ले रखा है। विनोबा जी ब्रह्मचारी हैं। इनके दोनों भाई भी अविवाहित हैं।

घर पर ही विनोबा की प्रारंभिक शिक्षा हुई। स्कूल में पढ़ते समय भी आपके अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत था। आप 'गीता' और 'केसरी' माता को पढ़कर सुनाया करते थे। दो वर्ष तक एक प्राइमरी स्कूल में पढ़कर आप एक स्थानीय हाई स्कूल में भेजे गए। वहाँ आपने तीन वर्ष तक अध्ययन किया। १९१० ई० में विनोबा चौथी कक्षा के विद्यार्थी थे। ये अपने विद्यालय में परिश्रमी, सुव्यवस्थित और विनयशील विद्यार्थी के रूप में विख्यात थे। गणित इनका प्रिय विषय था। संभवतः गणित के प्रति इनके अनुराग ने ही जीवन के निश्चयों की गणना सतर्कतापूर्वक करने में इनकी सहायता की है। १९१३ में आपने मैट्रिक की परीक्षा पास कर इंटरमीजिएट में नाम लिखाया। पर कालेज की पढ़ाई शीघ्र ही समाप्त होने को थी। १९१६ की बात है, एक दिन माँ के पास बैठे हुए थे। उस समय एक अनोखी घटना हुई। स्कूल और कालेज की परीक्षाओं से संबद्ध जितने प्रमाणपत्र आदि कागज थे, आपने एकत्र किए और उनकी होली जला दी। इस

घटना से माँ परेशान हुईं। उन्होंने पूछा : 'बेटा, क्या जीवन में अब तुम्हें इनका कोई काम नहीं?' विनोबा ने दो टूक उत्तर दिया 'हाँ माँ, अब मैंने कालेज छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। मुझे इन कागज के टुकड़ों की कभी कोई आवश्यकता न होगी। फिर व्यर्थ क्यों इन्हें ढोता फिरूँ?' विनोबा के जीवन में यह बड़ा महत्वपूर्ण निश्चय था। पर यह उचित ही सिद्ध हुआ। विनोबा को उन कागज के टुकड़ों की सचमुच कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। १९१६ ई० के मार्च महीने में आप इंटरमीजिएट की परीक्षा देने ट्रेन से बंबई जा रहे थे। सूरत में ही आपने ट्रेन छोड़ दी और काशी चले आए। काशी आने के लिये उनकी अंतरात्मा ने ही कहा, पर काशी में वे अधिक दिनों तक न रह सके। घटनाएँ और तेजी से चलीं। वे धार्मिक जीवन बिताने गए थे पर महात्मा गांधी के लेखों से प्रभावित होकर उनके ही चेले बन गए।

गांधी जी के शिष्य के रूप में

७ जून, १९१६ ई० को महात्मा जी से आपकी मुलाकात हुई। और उसी दिन से उनके जीवन के नए अध्याय का प्रारंभ हुआ। विनोबा गांधी जी के आश्रम के सदस्य हो गये। पहली ही मुलाकात में विनोबा की आंतरिक प्रवृत्ति और उनके चरित्रों से गांधी जी बड़े प्रभावित हुए। शीघ्र ही उन्होंने बड़ौदा में विनोबा जी के पिता को एक पत्र लिखा:

'आपका पुत्र विनोबा मेरे पास है। आपके पुत्र ने इतनी अल्पायु में ही जीवन का इतना सत्व और संयम प्राप्त कर लिया है, जिसकी प्राप्ति के लिये मुझे वर्षों श्रम करना पड़ा।'

तो इतने अल्पकाल में महात्मा जी द्वारा विनोबा को इतनी प्रशंसा मिली। आश्रम के कार्यों में विनोबा जी ने प्रमुख भाग लिया और वे बापू के सच्चे शिष्य बन गए। एक स्मरणीय पत्र में उनके संबंध में महात्मा जी ने लिखा :

'मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि किन विशेषणों से तुम्हें अभिहित करूँ? तुम्हारा मूल्यांकन करने के योग्य मैं नहीं हूँ। तुमने स्वयं अपने को जाँचा है और मैं तुम्हारे निर्णयों से सहमत हूँ। मैं तुम्हारा बापू होना स्वीकार करता हूँ। मैंने तुममें जो आशाएँ की थीं, तुम प्रायः उसके योग्य सिद्ध हुए हो। मेरा मत है कि सत्यवादी पिता अपने से

भी सत्यवादी पुत्र को जन्म देता है। सच्चा पुत्र वह है जो अपने पिता के कार्यों को आगे बढ़ाता है। यदि पिता सत्यवादी, दृढ़व्रती और दयालु हो तो पुत्र में ये गुण उससे भी अधिक मात्रा में दृष्टिगत होंगे। मैं पाता हूँ कि तुमने ऐसा ही किया है। मैं अनुभव करता हूँ कि ये गुण तुम्हें मेरे प्रयत्न से नहीं आए हैं। इसीलिये तुमने बापू का जो पद मुझे प्यार से दिया है उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मैं प्रयत्न करूँगा कि मैं उसके योग्य बनूँ। आश्रम के बाहर रहकर भी तुमने आश्रम के व्रतों का सचेत मन से पालन किया है। ईश्वर करें तुम चिरंजीवी हो। हिंद की सेवा का साधन बनो, यही भगवान् से मेरी प्रार्थना है।'

इसके बाद के कतिपय वर्ष विनोबा ने साबरमती आश्रम में बिताए जहाँ वे सेठ जमनालाल बजाज जैसे कांग्रेस कार्यकर्ताओं के संपर्क में आए। आश्रम की विभिन्न योजनाओं में आपका सक्रिय सहयोग रहता था। चर्खा कातना, नई तालीम, सफाई और कुटीरोद्योगों का संघटन आपके प्रिय कार्य थे।

१९२४ ई० में महात्मा जी ने आपको तिरुवांकुर राज्य के विकोम नामक स्थान में हरिजन-मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह के संघटन और उसके नेतृत्व के लिये भेज दिया। तब से हरिजन-उत्थान के कार्यों में आप विशेष रुचि लेने लगे। हरिजनों के सच्चे मित्र के रूप में आज उनकी गणना है।

विनोबा जी ने केवल दो बार जेलयात्रा की है। हैलम टेनिसन के शब्दों में 'गांधी जी के घनिष्ठ साथी के लिये यह बड़ी अल्प खुराक है। एक बहुभाषाविद् के रूप में विनोबा जी प्रसिद्ध हैं। इनको कई भाषाओं का ज्ञान है। मराठी इनकी मातृभाषा है, गुजराती और हिंदी भी उनके लिये मातृ-भाषा सी ही हैं। उर्दू, बँगला, उड़िया, पंजाबी और दक्षिण भारत की चारों भाषाओं का उन्होंने पर्याप्त अभ्यास किया है। ये जन्मजात सत्याग्रही हैं और आज महात्मा जी के सजीव उदाहरण हैं। महात्मा जी के उद्देश्यों की पूर्त्ति में जितने उत्साह से वे लगे हैं, दूसरा कोई नहीं। गांधी जी के गुणों, उनकी आदतों और भारत का मानचित्र बदल देने के उनके स्वप्नों का जितना अधिक प्रतिबिंब विनोबा में पड़ा है, उतना भारत में आज किसी दूसरे पर नहीं। महात्मा जी ने विनोबा के बारे में लिखा था :

"उन्होंने कोई डिग्री हासिल नहीं की है, क्योंकि १६१६ में मेरे भारत जाने पर उन्होंने कालेज छोड़ दिया था। संस्कृत के वे विद्वान् हैं। प्रायः आश्रम के जन्म के समय वे इसके सदस्य बन चुके थे। वे इसके सबसे पुराने सदस्यों में हैं। अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये संस्कृत के उच्च अध्ययन के निमित्त उन्होंने एक वर्ष की छुट्टी ले ली थी और करीब करीब ठीक उसी समय जब एक वर्ष पूर्व उन्होंने आश्रम छोड़ा था, बिना किसी पूर्व सूचना के वापस आ गए। मैं तो भूल ही गया था कि उस दिन उन्हें आ जाना चाहिए था। आश्रम के सभी छोटे से छोटे कामों में—पाखाना साफ करने से भोजन बनाने तक—उन्होंने भाग लिया है। यद्यपि उनकी स्मृति अद्भुत है और प्रकृत्या वे विद्यार्थी ही हैं, पर अपने समय का अधिकांश उन्होंने सूत कातने में लगाया है। चर्खे में उन्होंने उतनी दक्षता प्राप्त कर ली है, जितनी कम लोगों ने की होगी।'

विनोबा का विश्वास है कि गाँवों से गरीबी मिटा देने और उनमें फिर से जीवन फूँक देने के लिये चर्खे का गाँव गाँव में सर्वत्र प्रचार आवश्यक है। विनोबा जी जन्मजात शिक्षक हैं। हस्तकला द्वारा शिक्षा-प्रसार की योजना में उन्होंने सहायता दी है। चर्खा कातने की कला पर तो उन्होंने एक पाठ्यपुस्तक की ही रचना कर डाली है। उन्होंने निदकों को बतला दिया है कि चर्खा कातना सभी हस्तकलाओं में श्रेष्ठ कला है। बुनियादी शिक्षा में इसका समुचित उपयोग किया जा सकता है। तकली कातने में विनोबा ने क्रांति ला दी है और इसकी बहुत सी अज्ञात संभावनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। कातने की कला में सारे भारत में आपकी जोड़ का कोई दूसरा नहीं है।

अपने हृदय से इन्होंने अस्पृश्यता की प्रत्येक निशानी मिटा दी है। सांप्रदायिक एकता में इनका उतना ही विश्वास है, जितना मेरा। इस लाभ के मानस से पूरी तरह अवगत होने के लिए विनोबा ने एक वर्ष तक कुरान का मूल रूप में अध्ययन किया है। इसके लिये उन्होंने अरबी सीखी। अपने पड़ोसी से सजीव संपर्क रखने के लिये आपने इसकी आवश्यकता समझी थी।

अपने शिष्यों और कार्यकर्ताओं की इनकी एक सेना है, जो इनके इशारे पर कोई भी बलिदान दे सकती है। इन्होंने अपना एक ऐसा शिष्य

तैयार कर लिया है, जिसने कुष्ठ रोगियों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया है। यद्यपि डाक्टरी का उसे ज्ञान नहीं, पर अपने दृढ़ व्रत से उसने कुष्ठ रोग की चिकित्सा पद्धति पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और वह आज कई कुष्ठाश्रमों का संचालन कर रहा है। उसने सैकड़ों कुष्ठ रोगियों को चंगा किया है। उसने कुष्ठ रोग की चिकित्सा पर मराठी में एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। विनोबा वर्षों तक वर्धा महिला आश्रम के संचालक रह चुके हैं। दरिद्रनारायण के प्रति उनकी भक्ति पहले तो उन्हें वर्धा के एक समीपवर्ती गाँव में ले गई, पर अब वे काफी दूर जा चुके हैं। अब वे वर्धा से पाँच मील दूर पौनार में रहते हैं, जहाँ अपने शिक्षित शिष्यों के माध्यम से उन्होंने ग्रामवासियों से संपर्क स्थापित कर लिया है।"

विनोबा का विश्वास है कि भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाना आवश्यक है। इतिहास के वे बड़े सतर्क विद्यार्थी हैं, किंतु उनका यह भी विश्वास है कि भारत की सच्ची स्वतंत्रता तो रचनात्मक कार्यक्रम से ही मिल सकती है जिसका खादी केंद्र है, उनका विश्वास है कि चर्खा अहिंसा के बाह्य रूप का सर्वोत्तम प्रतीक है। चर्खा आज इनके जीवन का अभिन्न अंग है। पिछले सत्याग्रह संग्रामों में आपने सक्रिय भाग लिया है। राजनीतिक रंगमंचों की भीड़ से आप सदा दूर रहे हैं। इनका विश्वास है कि सविनय अवज्ञा की पृष्ठ-भूमि में रचनात्मक कार्यक्रम राजनीतिक रंगमंच से, जहाँ पहले से ही बहुत भीड़भाड़ हो चुकी है, अधिक कारगर है। उनका दृढ़ विश्वास है कि रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास और उस पर अमल किए बिना अहिंसा प्रतिरोध असंभव है।"

महात्मा के पदचिह्नों पर

विनोबा के इस संक्षिप्त जीवन-परिचय को समाप्त करते समय यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भूदान के द्वारा गांधी जी के कार्य का क्षेत्र विस्तृत किया है। भूदान आंदोलन विश्व के इतिहास में अपूर्व घटना है। अगले अध्याय में हम इस पर विस्तार से विचार करेंगे।

विनोबा सजीव संत हैं। भारतीय जनजीवन को उनसे अधिक कोई आकर्षित नहीं कर सकेगा। अपने आचार-विचार में वे करोड़ों भारतीय जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं।

और इन सब से ऊपर, महादेव भाई के शब्दों में विनोबा में कुछ वे चीजें हैं, जो अन्य किसी में नहीं। उनकी प्रमुख विशेषता है कि जिस क्षण वे कोई निश्चय करते है, उसी क्षण उसे कार्य रूप में परिणत करने लगते हैं। सतत विकास उनकी दूसरी विशेषता है। बापू के अतिरिक्त यह गुण मैं विनोबा में ही पाता हूँ।

इतिहास में चरित्रों की तुलना बड़ा नाजुक काम है। प्रायः लेखकों की पूर्व धारणाओं से यह निष्पक्ष नहीं हो पाता। कभी कभी किसी चरित्र के आंतरिक गुणों का गलत निर्णय करने के कारण चित्र भ्रष्ट भी हो जाता है और इससे तुलना कटु-तिक्त होकर वास्तविकता से कोसों दूर जा पड़ती है। हैलम टेनिसन ने विनोबा और महात्मा गांधी की तुलना करते हुए गुरु और शिष्य दोनों के प्रति अन्याय किया है। टेनिसन ने विनोबा का उद्धरण देते हुए कुछ यह आभास देने का यत्न किया है कि वे महात्मा जी की मृत्यु के उपरांत उनका स्थान ग्रहण करने के लिये उत्सुक थे? 'यदि गांधीजी की मृत्यु न हुई होती तो भला मैं सामने आने का साहस कैसे कर सकता था?' विनोबा ने गांधी जी की मृत्यु के उपरांत उनका स्थान लेने की आकांक्षा कभी नहीं की।

इसी प्रकार प्रधान मंत्री और योजना आयोग के सदस्यों से भेंट करने के लिये विनोबा द्वारा दिल्ली की यात्रा करने का भी गलत अर्थ लगाया गया है। टेनिसन लिखते है :

"सबसे पहले तो विनोबा पर महत्ता का बोझ लादने का यत्न किया गया। वे दिल्ली बुलाए गए और उन्हें गांधी जी की समाधि के पास टिकाया गया। यह सब नाटक का प्रतीक था, जो असफल रहा, क्योंकि द्वितीय श्रेणी के पुराने मुकुट यदि कोई आपके मस्तक पर रखे तो वह ठीक नहीं बैठेगा[1]।

पश्चिम के निवासी के लिये 'राजनीतिक गांधी सफल रहा, संत गांधी असफल।' पर वे इतना नहीं जानते कि भारत के किसी भी जनांदोलन में कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता, यदि वह संत न हो।

भूदान आंदोलन की सफलता विशेषतया इसीलिये है कि उसके प्रवर्तक संत विनोबा ने भूदान को जनसाधारण में एक यज्ञ की संज्ञा दे दी।

---

[1] हैलम टेनिसन : डाइनेस्टी आव् सेंट्स, इन काउन्टर, दिसंबर, १९५४।

तृतीय अध्याय

मुझे कम्युनिस्ट होना सिखाओ

विनोबा कम्युनिस्टों के मित्र हैं। उनके प्रति उनके मन में कोई द्वेष या दुर्भाव नहीं है। किंतु वे हिंसा या भारत के करोड़ों गरीब दुखियों के दुख-दर्द को मिटाने के लिये कम्युनिस्टों के उपायों में विश्वास नहीं करते। भूदान आंदोलन का जन्म तेलंगाना के उस इलाके में हुआ, जहाँ कम्युनिस्टों का गढ़ है। अगले अध्याय में हम यह बतलाएँगे कि वे भूदान आंदोलन के द्वारा किस प्रकार भारत से कम्युनिज्म का खात्मा करना चाहते हैं। यह बात तो निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि भारत में कम्युनिज्म का सबसे बड़ा जवाब भूदान आंदोलन ही है। इस सूत्र का भाष्य करने की आवश्यकता पड़ेगी।

तेलंगाना में दिए गए विनोबा के भाषणों से कम्युनिस्टों के प्रति उनके विचारों पर प्रकाश पड़ता है। चंदूपट्ट में विनोबा ने कहा था:

मैंने सुना है कि यहाँ के गाँवों में एक प्रकार की जागर्ति है, क्योंकि कम्युनिस्टों ने यहाँ कुछ काम किया है। कम्युनिस्टों को मैं अपना भाई समझता हूँ। कम्युनिस्टों में मेरे कुछ मित्र भी हैं। कम्युनिस्ट होने का अर्थ होता है गरीब-दुखियों की सेवा करना।'

किंतु इसी भाषण में विनोबा जी ने स्पष्ट कर दिया कि भारत के लिये कम्युनिस्ट आदर्श और उनके साधन उपयुक्त नहीं हैं। विनोबा ने कहा था:-

'किंतु कम्युनिस्टों ने हिंसात्मक कारवाइयों और हत्याओं में भाग लिया है, यह गलत बात हुई है। और इससे उनकी सारी सेवाएँ व्यर्थ जाती हैं। इस गाँव के निवासी श्री वेंकटेश्वर राव कम्युनिस्ट हैं और वे भले आदमी हैं। यदि वे मुझसे मिलते तो मैं उन्हें विश्वास करा देता कि उनका रास्ता गलत था। मैंने हैदराबाद और नलगोंडा की जेलों में कम्युनिस्टों से मुलाकात की है और उनसे बातचीत भी की है। मेरी दृढ़ इच्छा है कि मैं लोगों को विश्वास दिलाऊँ कि जनता की सच्ची सेवा शांतिमय उपायों से ही हो सकती है।

अहिंसा और भूमिसुधार

महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत ही वह देश है जो विश्व को दिखला सकता है कि मानवता का भविष्य अहिंसा पर ही निर्भर करता है। मेरा दृढ़ मत है कि भारत कम्युनिज्म नहीं अपनाएगा और लेनिन का मत पनपने के लिये भारत की भूमि उपयुक्त नहीं है। भारत ने अहिंसा से स्वराज्य पाया है। विनोबा का उपाय प्रेम का उपाय है और उसका आधार मानव ये आंतरिक शिवत्व में विश्वास है। ब्यौरे में कम्युनिस्टों से अपील करते हुए विनोबा ने कहा : 'मैं उनसे हिंसा के परित्याग की प्रार्थना करता हूँ। यदि वे मेरी बात मान लें तो कम्युनिज्म के प्रचारार्थ मैं उनके साथ भारत के कोने कोने में जाने को प्रस्तुत हूँ।

कांग्रेस अहिंसा में विश्वास करती है। इसका आधार देश की जनता के मनोभावों का अध्ययन है। भारत पूर्ण रूप से शांतिप्रेमी राष्ट्र है और अहिंसा जनता के जीवन का अंग बन चुकी है। हिंदूधर्म का आधार अहिंसा है। मैं कम्युनिस्ट हूँ पर "मैं हिंसा की आत्मघाती नीति स्वीकार नहीं करुँगा।" गांधी जी के इस वाक्य का उद्धरण देते हुए विनोबा ने कम्युनिस्टों को स्पष्ट कर दिया कि कम्युनिस्टों के लिये धनी लोगों का वध करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अब लोकतंत्र का युग प्रारंभ हो चुका है।

सच तो यह है कि बिना गोली बारूद के ही धनिकों को मारा जा सकता है, क्योंकि अब सभी वयस्क नर नारियों को मताधिकार प्राप्त हो चुका है। भविष्य में जो राज्य बनेगा, वह सर्वसाधारण का राज्य होगा। मैं कम्युनिस्टों से प्रार्थना करता हूँ कि वे खुलकर सामने आएँ और काम करें। यदि वे इसे स्वीकार करते हैं तो मैं उनसे सहयोग करूँगा। यदि कम्युनिस्ट हिंसा के सिद्धांत का परित्याग कर दें तो सभी सज्जन और नैतिक पुरुष उनसे सहयोग करेंगे।

विनोबा के अतिरिक्त और कम लोग ही ऐसे हैं, जिन्होंने यह समझ लिया है कि भारत में लोकतंत्र का आधार शांतिपूर्ण उपायों से भूमि के बटवारे पर होना चाहिए। जमींदारी उन्मूलन इस दिशा में पहला कदम है। इसका अगला चरण भूदान आंदोलन है। इसलिये कम्युनिज्म के उन्मूलन के लिये देश को भूदान आंदोलन को सफल बनाना चाहिए। सरकार तत्काल तो कम्युनिज्म का प्रसार रोक सकती है, किंतु भूमि समस्या के स्थायी

हल के बिना वह इसका उन्मूलन नहीं कर सकती। बड़े ही स्पष्ट ढंग से विनोबा ने कहा है:

'गर्मी के दिनों में घास नहीं मिलती, पर बरसात शुरू होते ही घास उग आती है, क्योंकि घास के बीज भूमि में बर्तमान रहते हैं। इसी प्रकार पुलिस कुछ समय के लिये कम्युनिस्टों का दमन कर सकती है, किंतु वे इनका खात्मा नहीं कर सकती। इसलिये सही रास्ते पर चलकर ही हम कम्युनिज्म का खात्मा कर सकते हैं।''

और यह सही रास्ता है भूमि के असमान बँटवारे को शांतिपूर्वक मिटा देना।

देश में विनोबा से अच्छा कम्युनिस्टों का सच्चा मित्र शायद ही कोई हो। पर इनके उपायों में जमीन आसमान का अंतर है। विनोबा गांधी जी के सच्चे शिष्य के रूप में हृदय परिवर्तन के लिये अहिंसात्मक उपायों में विश्वास करते हैं। कम्युनिस्ट हिंसा और गोली बारूद में विश्वास करते हैं। विनोबा का उपाय खुला रहस्य है। कम्युनिस्ट छिपकर काम करते हैं। भारत की भूमि कम्युनिज्म के लिये उपयोगी नहीं है। कांग्रेस के संसदीय दल की एक बैठक में नेहरू जी ने कहा था :

'मैंने बहुत पहले मार्क्स का अध्ययन किया था। मैं उससे बड़ा प्रभावित था। अध्ययन के दौरान में मैंने अनुभव किया कि उसका तरीका भारत में काम करने के लिये मुझे स्वीकार्य नहीं हो सकता। हमें अपने देश की परिस्थिति का, यहाँ की जनता का और उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करना चाहिए।''' इसलिये मैं कम्युनिस्ट उपायों को अस्वीकार करता हूँ क्योंकि वे नितांत अव्यावहारिक हैं[१]।'

विनोबा ने कम्युनिस्टों को चुनौती दी है कि आप मुझे कम्युनिस्ट होना सिखाएँ।

[१] द्रष्टव्य: आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, एकनामिक रिव्यू, १५ दिसंबर, १९५४ ई०।

चतुर्थ अध्याय

भूमि का एक छोटा सा टुकड़ा

भारत के संबंध में एक विचित्र बात है। यहाँ की भूमि तो बड़ी उर्वर है, पर निवासी निर्धन। भारत में विपुल और अत्यंत उपयोगी प्राकृतिक साधन हैं, फिर भी जनता निर्धन है। भारतीय आर्थिक जीवन में इस विपर्याय का कारण है, भूमि का अनुचित वितरण। भारत की सर्वसामान्य जनता को तब तक समृद्ध नहीं बनाया जा सकता, जब तक भूमि में वैज्ञानिक ढंग से कृषि नहीं की जाती। भारत के भावी आर्थिक प्रश्न के मूल में भूमि का पूर्ण उपयोग कैसे किया जाय यह समस्या है। अतः विनोबा के भूदान आंदोलन को पूरी तरह समझने के लिये भारत में भूमि की स्थिति और यहाँ की जनता के संबंध में कुछ बात बतला देने की आवश्यकता है।

हमारा संविधान इस भूमिका के साथ प्रारंभ होता है: "हम भारतवासी"। भूदान के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये हम पूछेंगे कि "हम भारतवासियों" की संख्या क्या है? हम रहते कहाँ हैं? हमारी जीविका का साधन क्या है? जनसंख्या की वृद्धि का हमारे जीवन स्तर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

इन प्रश्नों का उत्तर केवल उत्सुकता के शमन के लिये ही नहीं आवश्यक है, बल्कि देश की भूमि और जनता को ध्यान में रखकर देश की अर्थ-व्यवस्था के निर्माण के लिये इस आंदोलन के महत्व की दृष्टि से भी आवश्यक है।

सर्वप्रथम हम दो संख्याओं की ओर ध्यान दिलाएँगे। ये बड़े महत्व की हैं। भारत की आर्थिक समस्या के मूल में ये ही दोनों संख्याएँ हैं।

प्रथम—८१ करोड़ एकड़ भूमि। यह हमारी संपूर्ण भूमि का क्षेत्रफल है।

द्वितीय—३६ करोड़ निवासी। भारत के गणतंत्र की जनसंख्या इतनी है।

इन मूल संख्याओं के सहारे हम एक तीसरी संख्या का पता लगाते हैं। वह है २. २५ एकड़ भूमि। यही हमारे यहाँ प्रति व्यक्ति भूमि का औसत है। अब आप यह कल्पना करें कि गणित के नियमों का कड़ाई से पालन

करते हुए यदि हम भारतीय गणतंत्र की भूमि यहाँ के निवासियों में विभाजित कर दें तो प्रति व्यक्ति को जितनी भूमि मिलेगी, उसकी लंबाई उत्तर-दक्षिण १०० गज और चौड़ाई पूरब-पश्चिम भी इतनी ही होगी।

"प्रति व्यक्ति भूमि का यह औसत" भूमि के वितरण और उसके प्रबंध की दृष्टि से बड़े महत्व का है। अलावा इसके एक पीढ़ी से दूसरी तक इस क्षेत्रफल में परिवर्तन होता रहेगा। यह परिवर्तन हमारे जीवन स्तर पर गंभीर प्रभाव अवश्य डालेगा। फलस्वरूप हमें अपनी आर्थिक समस्या के समाधान के लिये कृषि और भूमिप्रबंध के नए उपाय अवश्य ही कार्य में लाने होंगे।

भूमि की उपयोगिता

भूमि की स्थिति, मिट्टी और जलवायु की दृष्टि से भी इस "प्रति व्यक्ति भूमि के औसत' की और सूक्ष्म परीक्षा आवश्यक है क्योंकि इस क्षेत्रफल में पहाड़, पठार, जंगल आदि अनेक बातों का ध्यान रखना होगा जिससे यह संख्या और भी कम हो जायगी। इस ८१.३६ करोड़ क्षेत्रफल में ३०.८२ करोड़ एकड़ भूमि अनुपयोगी है। इस प्रकार उपयोगी भूमि तो केवल ५५.४४ करोड़ एकड़ ही बच रहती है। किंतु यह न समझ लेना चाहिए कि सभी उपयोगी भूमि कृषि योग्य है। इसमें भी पर्याप्त क्षेत्रफल ऐसा है जिसमें बंध्या चट्टानें हैं, जिन पर मिट्टी है ही नहीं। सारे भारत में ऊसर भूमि भी है। खेद है कि इन सबका निश्चित क्षेत्रफल ज्ञात नहीं है। सच तो यह है कि हमारी भूमि का एक बड़ा क्षेत्रफल ऐसा है, जहाँ बबूल और जंगली घास ही उगती है।

फिर इस उपयोगी भूमि में भी अनाज नहीं उत्पन्न होगा, यदि पर्याप्त वर्षा न हो। भारत भर की कुल वर्षा तो बड़ी अधिक है, पर इसका वितरण असमान है, स्थान और काल दोनों दृष्टियों से। कुछ क्षेत्रों में तो वृष्टि अत्यधिक होती है और कुछ में एकदम अल्प। साल के कतिपय महीनों में तो पानी खूब बरसता है, पर अन्य महीने एकदम सूखे रहते हैं। अनुमान यह लगाया गया है कि देश के सभी भागों का ध्यान रखते हुए अच्छे, बुरे और मध्यम वर्षों में प्रति एकड़ भूमि औसतन ४२ इंच पानी पाती है। वजन की दृष्टि से प्रति एकड़ हमें एक लाख मन से अधिक जल प्रतिवर्ष मिलता है। किंतु जल के इस असमान वितरण का फल यह है कि सभी उपयोगी भूमि हमें कृषि के लिये प्राप्त नहीं होती।

ऊपर दिये गये आंकड़ों से एक बात स्पष्ट होती है। वह यह कि ऊपर हम लोगों ने प्रति व्यक्ति भूमि का औसत जो सवा दो एकड़ निकाला था दरअसल औसत उससे भी कम होता। मुख्य समस्या सामने यह है कि इस उपयोगी भूमि का जनता में वितरण कैसे किया जाय? जैसे-जैसे शताब्दियाँ बीतेंगी, यह "प्रति व्यक्ति भूमि का औसत" भी घटता ही जायगा। इसलिए भविष्य में देश को भोजन तभी मिल सकता है, जब हम देश के लिए समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मान लें। इसके लिए भूमि की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मान लें। इसी कारण भूमि के समाजवादी करण की आवश्यकता है। भूदान का असली महत्त्व तो यहाँ है।

जनसंख्या और भूमि का क्षेत्रफल

इस खंड की समाप्ति के अवसर पर अमेरिका और रूस में भूमि-वितरण का मिलान मनोरंजक होगा। इन दोनों देशों की जनसंख्या का जोड़ भारत की जनसंख्या से कुछ कम ही होगा। किंतु इनका क्षेत्रफल भारत से ६ गुना अधिक है। इस स्थान पर आंकड़े दिये जा रहे हैं। इनसे लाभ होगा।

देश के जीवन-उपाय की परीक्षा से विदित होगा कि हमारे यहाँ अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर करती है। खंड १ के राज्यों में कृषि जीवी, और कृषिजीवीतर लोगों की प्रतिशत संख्या के भी आंकड़े दिये जा रहे हैं।

सारणी १

जनसंख्या और भूमि का क्षेत्रफल

	भारत	अमेरिका	रूस
जनसंख्या करोड़ों में	३६.१	१५.१	१६.४
भूमि का क्षेत्रफल करोड़ एकड़ों में	८१.३	१६०.५	५६०.४
प्रति व्यक्ति भूमि का औसत एकड़ों में	२.२५	१२.६४	३०.४६
कृषि वाली भूमि	.६७	७.४१	४.८४
कृषि योग्य भूमि	.६७	३.२	२.८७

१. सेंसस ऑव् इंडिया १६५१ प्रथम खंड रिपोर्ट दिल्ली···पृ० ४०।

२. वही० पेपर संख्या १, सारणी संख्या ३।

सारणी २

कृषिजीवी तथा अन्य जनसंख्या

राज्य	कुल जनसंख्या में कृषकों का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में शेष अन्य व्यक्तियों का प्रतिशत
(१) उत्तर प्रदेश	७४.१८	२५. ८
(२) मद्रास	६४.९३	३५. ६
(३) बिहार	८६.०१	१३.९५
(४) बंबई	६१.४५	३८.५४
(५) पश्चिमी बंगाल	५७.२१	४२.७१
(६) मध्यप्रदेश	७६.००	२३.९९
(७) उड़ीसा	७९.२८	२०.७१
(८) पंजाब	६४.५१	३'.४८
(९) आसाम	७३.३४	२६.६६

भारतीय अर्थनीति की मौलिक समस्या कृषकों की आर्थिक अवस्था के सुधार की है, जिसका प्रतिशत अत्यधिक है।

यह बात भूलनी न चाहिए कि भारत गाँवों का देश है। भारतवासी कुल ५ लाख ६१ हजार १०७ स्थानों में रहते हैं जिनसे ३ हजार १८ नगर हैं और ५ लाख ४८ हजार ८९ गाँव। भारत की जनसंख्या ३६.१८ करोड़ है। इसमें २९.५ करोड़ व्यक्ति गाँवों में रहते हैं। ६ करोड़ १९ लाख नगरों में। यहाँ नगर-निवासियों की संख्या ब्रिटेन और फ्रांस की सारी जनसंख्या के योग से अधिक है। भारत की जनसंख्या के १७.३ प्रतिशत व्यक्ति नगरों में रहते हैं। ८२.७ प्रतिशत गाँवों में। ध्यान में रखने की बात यह है कि इन नगरों में ७३ ऐसे हैं जो इतने विशाल हैं कि उनकी जनसंख्या का योग कुल नगर निवासियों की जनसंख्या का तृतीयांश से अधिक है। विशाल कलकत्ता में ही संपूर्ण भारत के नगर निवासियों का पंचमांश रहता है।

भूदान आंदोलन का महत्त्व इसमें है कि भारत में शांतिपूर्ण उपायों से ही धन-धान्य के बीच गरीबी मिटाई जा सकती है। भूदान आंदोलन भारत की भावी कृषिसंबंधी नीति—भूमि के उचित बँटवारे का हल उपस्थित करता है।

पंचम अध्याय

कम्युनिज्म से विनोबा को प्रकाश मिलता है

हैदराबाद तेलंगाना से भूदान आंदोलन का प्रारंभ हुआ। तेलंगाना में महबूबनगर, निजामाबाद, करीमनगर, नलगोंडा और वारंगल के जिले संमिलित हैं। इनकी भाषा तेलुगु है।

ब्रिटिश शासन में पर्याप्त काल तक भूमिपति जमींदारों ने अपने किसानों पर असीम अधिकार प्राप्त किये थे। यहाँ तक कि कभी कभी तो किसान जमींदार की चल संपत्ति भी समझे जाते थे। कांग्रेस के कार्यों और लगान-बंदी आंदोलन से किसानों में जागर्ति आई। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा और उन्हें बहुत से ऐसे अधिकार मिल गये, जिनसे वे बहुत काल से वंचित थे। किंतु रियासतों में स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् भी किसानों की दशा पहले जैसी ही बनी रही। वहाँ के किसानों का शोषण होता था। इसके लिये प्राचीन भूमि-व्यवस्था की ही जिम्मेदारी थी। संभवतः तेलंगाना से बुरी किसानों की स्थिति देश के किसी भाग में न थी। कम्युनिस्टों ने स्वभावतया इसका लाभ उठाया और उन्होंने कानून अपने हाथ में ले लेने के लिये प्रचार प्रारंभ किया। हिंसा का पागल नर्त्तन प्रारंभ हुआ गरीब किसान जमींदारों के अत्याचारों और कम्युनिस्टों की कारर्वाइयों से प्राप्त कष्टों के बीच पिस गया। एक प्रकार से पूरे क्षेत्र में आतंक फैल गया, जिसकी उपमा देश में नहीं मिल सकती। तेलंगाना कम्युनिज्म के लिए उत्तम भूमि तथा लोकतंत्र के प्रयोग के लिए खतरे की घंटी हो गया। यहीं विनोबा को भूदान आंदोलन के प्रारंभ लिए प्रेरणा मिली।

तेलंगाना की समस्या का विनोबा ने सही निदान किया। मिरियालगुडा की एक प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा:—"इस इलाके में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके पास हजारों बीघे भूमि है और कुछ ऐसे हैं, जिनके पास अपनी कहने को बीघे भर भी भूमि नहीं हैं।"

जनता की असंतोषजनक आर्थिक दशा का कारण भूमि की कुव्यवस्था, गृहोद्योग का अभाव, रोजगार की कमी और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों का होना है।

विनोबा ने बाल पल्ले में कहा था:—'इस गाँव की जनसंख्या ३००० है किंतु ६० परिवारों ने सारी भूमि का स्वामित्व प्राप्त कर लिया है। गाँव में कोई गृहोद्योग भी नहीं है। गाँव के बुनकरों को इतना भी सूत नहीं जुटता कि वे महीने में दस दिन काम कर सकें। भूमि के उचित बटवारे के साथ साथ गाँव में गृहोद्योग का भी विकास होना चाहिए। ग्रामीणों को ऐसी फसल उगानी चाहिए जिससे नगद पैसा मिले। उन्हें अन्न और कपास उगाना चाहिए जिससे गाँव को भोजन मिले और गाँव भर के लिए कपड़ा बन सके। तेलंगाना की दुर्दशा का एक कारण मूंगफली और तंबाकू जैसी फसलों का बेहिसाब उगाया जाना भी है।

पहला भूदान

अकस्मात् संत के मस्तिष्क में एक प्रकाश हुआ। दिन में विनोबा ने हरिजन बस्ती का निरीक्षण किया था। ४ दिन के एक प्यारे बच्चे को उन्होंने अपनी गोद में खेलाया था। इसका असर जादू का सा हुआ। बहुत से हरिजन उनके आसपास आ गये। उत्सुकतापूर्वक विनोबा ने पूछा 'अपनी समस्या खुद हल कर लेने के लिये तुम्हें कितनी भूमि की आवश्यकता पड़ेगी।' वे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये तैयार होकर न आये थे। कानाफूसी के बाद ही तत्काल उत्तर मिला, ८० एकड़ भूमि। विनोबा ने आँखें बंद कीं और गंभीर चिंतन में डूब गये। आपने सोचा कि क्या यह संभव है कि कोई जमीदार इन्हें इतनी भूमि दे दे, जिससे इनकी गरीबी, दुख-दर्द और बेरोजगारी की समस्या हल हो जाय। सभा में पूर्ण शांति थी। किंतु अप्रत्याशित रूप से गाँव के एक जमीदार श्री वी० आर० रेड्डी उठ खड़े हुए और बोले कि मैं १०० एकड़ भूमि दान में दे रहा हूँ। श्री रेड्डी का उत्तर अप्रत्याशित था और था बड़ा प्यारा, साथ ही सभी दर्शकों को आश्चर्य में डाल देनेवाला। विनोबा भी इतनी शीघ्र ऐसा उत्तर मिलने की आशा न रखते थे उन्होंने उत्तर दुहराने की इच्छा प्रकट की। श्री रेड्डी ने गंभीर स्वर में वही कहा जो पहले कह चुके थे। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि तत्काल दानपत्र पर हस्ताक्षर भी कर सकते हैं।

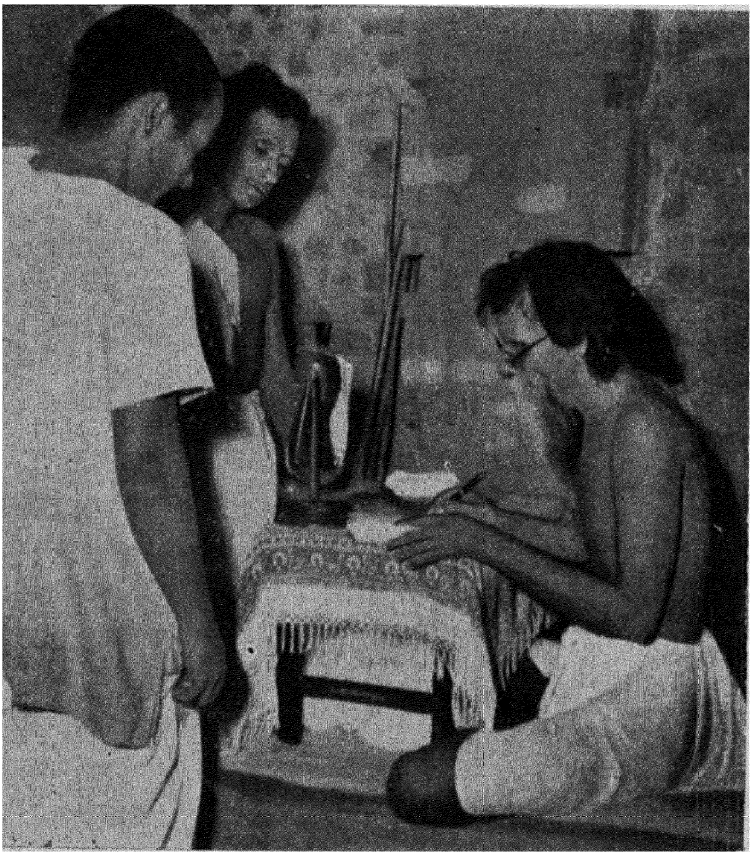

दानपत्र पर हस्ताक्षर

सभा की समाप्ति पर विनोबा ने इन से अकेले में बातचीत कर फिर पुष्टि की। इसके अनंतर विनोबा को विश्वास हो गया कि श्री रेड्डी अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न होंगे। इस घटना का गहरा असर उनके मस्तिष्क पर हुआ। विनोबा ने सारी रात बेचैनी से काटी। वे ईश्वर में विश्वास करते हैं। उन्होंने प्रार्थना की कि भगवान, देश की भूमि-समस्या के शांतिमय समाधान के लिए और व्यक्तियों को ऐसे ही भूदानों के लिए प्रेरित कर जिससेइस कार्य में मुझे सफलता प्राप्त हो। अगले दिन प्रातः विनोबा ने श्री रेड्डी से पुनः पुष्टि की। तब तक उन्होंने दानपत्र पर हस्ताक्षर भी कर दिया था।

भूदान आंदोलन का जन्म

१८ अप्रैल १९५१ को भूदान आंदोलन का प्रारंभ हुआ और प्रथम भू-दान मिला। जब विनोबा जी अगले गाँव में गये तो उन्होंने श्रीरेड्डी की उदारता की चर्चा की और यह पूछा कि क्या इस गाँव में भी कोई ऐसी उदारता से दान देने को प्रस्तुत है। सौभाग्यवश एक दूसरे सज्जन यहाँ भूदान के लिए प्रस्तुत हो गये। इस दिन से विनोबा जी को आंदोलन के पुष्ट होने का विश्वास हो गया। फिर विनोबा एक गाँव से दूसरे गाँव में गये और उन्हें भूदान मिलते गये। इस प्रकार उनका विश्वास पुष्ट से पुष्टतर होता गया कि भूदान-यज्ञ के माध्यम से ही भूमि की समस्या सुलझ सकती है।

संक्षेप में भूदान के जन्म की यही कथा है। कम्युनिस्टों के गढ़ से विनोबा को प्रकाश मिला। ६ जून १९५१ को आपने तेलंगाना की यात्रा समाप्त की। ५१ दिनों की इस ऐतिहासिक यात्रा में विनोबा ने २०० गाँवों का भ्रमण किया। १२२०५ एकड़ भूमि उन्हें दान में मिली। आंदोलन को पूरा करने के लिये आपने तीन व्यक्तियों की एक समिति बना दी। ये भूमिहीनों में भूमि का वितरण भी करते हैं।

विनोबा ने तेलंगाना में एक आश्चर्य को चरितार्थ करके दिखा दिया दूसरे राज्यों में भूदान आंदोलन के प्रचार ने आंदोलन की दृढ़ता के प्रति जनता को विश्वस्त कर दिया है। ज्यों ज्यों दिन बीत रहा है, अधिक से अधिक व्यक्ति आंदोलन में संमिलित हो रहे हैं। राज्य सरकारों ने आंदोलन को दृढ़ बनाने के लिए कानून भी बना दिये हैं।

सभा की समाप्ति पर विनोबा ने इनसे अकेले में बातचीत कर फिर पुष्टि की। इसके अनंतर विनोबा को विश्वास हो गया कि श्री रेड्डी अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न होंगे। इस घटना का गहरा असर उनके मस्तिष्क पर हुआ। विनोबा ने सारी रात बेचैनी से काटी। वे ईश्वर में विश्वास करते हैं। उन्होंने प्रार्थना की कि भगवान, देश की भूमि-समस्या के शांतिमय समाधान के लिए और व्यक्तियों को ऐसे ही भूदानों के लिए प्रेरित कर जिससेइस कार्य में मुझे सफलता प्राप्त हो। अगले दिन प्रातः विनोबा ने श्री रेड्डी से पुनः पुष्टि की। तब तक उन्होंने दानपत्र पर हस्ताक्षर भी कर दिया था।

भूदान आंदोलन का जन्म

१८ अप्रैल १९५१ को भूदान आंदोलन का प्रारंभ हुआ और प्रथम भू-दान मिला। जब विनोबा जी अगले गाँव में गये तो उन्होंने श्रीरेड्डी की उदारता की चर्चा की और यह पूछा कि क्या इस गाँव में भी कोई ऐसी उदारता से दान देने को प्रस्तुत है। सौभाग्यवश एक दूसरे सज्जन यहाँ भूदान के लिए प्रस्तुत हो गये। इस दिन से विनोबा जी को आंदोलन के पुष्ट होने का विश्वास हो गया। फिर विनोबा एक गाँव से दूसरे गाँव में गये और उन्हें भूदान मिलते गये। इस प्रकार उनका विश्वास पुष्ट से पुष्टतर होता गया कि भूदान-यज्ञ के माध्यम से ही भूमि की समस्या सुलझ सकती है।

संक्षेप में भूदान के जन्म की यही कथा है। कम्युनिस्टों के गढ़ से विनोबा को प्रकाश मिला। ६ जून १९५१ को आपने तेलंगाना की यात्रा समाप्त की। ५१ दिनों की इस ऐतिहासिक यात्रा में विनोबा ने २०० गाँवों का भ्रमण किया। १२२०५ एकड़ भूमि उन्हें दान में मिली। आंदोलन को पूरा करने के लिये आपने तीन व्यक्तियों की एक समिति बना दी। ये भूमिहीनों में भूमि का वितरण भी करते हैं।

विनोबा ने तेलंगाना में एक आश्चर्य को चरितार्थ करके दिखा दिया दूसरे राज्यों में भूदान आंदोलन के प्रचार ने आंदोलन की दृढ़ता के प्रति जनता को विश्वस्त कर दिया है। ज्यों ज्यों दिन बीत रहा है, अधिक से अधिक व्यक्ति आंदोलन में संमिलित हो रहे हैं। राज्य सरकारों ने आंदोलन को दृढ़ बनाने के लिए कानून भी बना दिये हैं।

विनोबा के इस यज्ञ ने तेलंगाना में कम्युनिस्ट कारवाइयों पर नियंत्रण पाया। सरकार और जनता सभी की निगाहें वहाँ की समस्या को गंभीर चिंता से देख रही थीं।[१]

ग्रामीण जीवन को बदलने के लिये भूदान यज्ञ के जन्म की यही कथा है। यह एक अहिंसात्मक प्रयोग है।

[१] श्रीमन्नारायण अग्रवाल : 'एकनामिक्स ऑव् भूदान यज्ञ' ए० आई० सी० सी० एकनामिकरिव्यू, मार्च १९५३।

छठा अध्याय

जीविका का चित्र

भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में भूदान-आंदोलन के महत्त्व को समझने के लिये इस अध्याय में जीविका के साधन की पृष्ठभूमि में भारतीय जनसंख्या के विश्लेषण का प्रयत्न किया जायगा। किंतु यह लेखा-जोखा उपस्थित करने से पूर्व यह बतला देना आवश्यक है कि अधिकांश भारतीय जनता गाँवों में रहती है, इसलिए भारतीय अर्थ-व्यवस्था के लिए भूदान का विशेष महत्त्व है। नीचे दिया गया लेखा निम्नलिखित खंड १ के राज्यों में ग्रामीण और नगर-निवासी जनता के विभाजन को बतलाता है ?[1]—

सारणी सं० ३

राज्य	पूरी जनसंख्या	ग्रामीण	नगर-निवासी
आसाम	९०४३७०७	८६२६२८९	४१४४१८
बिहार	४०२२५६४७	३७५२१२१६	२७०४७३१
बंबई	३५६५६१५०	२४७८५८१०	१११७०३४०
मध्यप्रदेश	२१२४७५३३	१८३७०१९४	२८७७३३६
मदरास	५७०१६००२	४५८३२२६८	१११८३७३४
उड़ीसा	१४६४५६४६	१४०५१८७६	५९४०७०
पंजाब	१२६४१२०५	१०२४०२७३	२४००६३२
उत्तरप्रदेश	६३२१५७४२	५४१६००१३	८६२५६६६
पश्चिमी बंगाल	२१८१०३०८	१८६५७०४५	६१५३२६३
भारत	३५६८२९४८५	२६५००४२७१	६१८२५२१४

उपरिलिखित आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है। ३५ करोड़ ६६ लाख जनसंख्या में २६ करोड़ ५० लाख व्यक्ति गाँव में रहते हैं तथा ६ करोड़ १९ लाख व्यक्ति नगरों में।

[1] सेंन्सस ऑव् इंडिया १९५१, पेपर नम्बर १, सारणी ४

गाँवों के क्षेत्रफल को दृष्टि में रखकर जनसंख्या के विभाजन के चित्र को देखने से ज्ञात होगा कि २६. ५ प्रतिशत भारतीय जनता ऐसे छोटे गाँवों में रहती है, जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है, ४८. ८ प्रतिशत जनता मध्यम श्रेणी के गाँवों में रहती है, जिनकी जनसंख्या ५०० से २००० के बीच है, १६. ४ प्रतिशत जनता ऐसे बड़े गांवों में रहती है जिनकी जनसंख्या २००० से ५००० के बीच है तथा ५. २ प्रतिशत जनता ही ऐसी है, जो ऐसे विशाल गांवों में रहती है, जिनकी जनसंख्या ५००० से अधिक है। इस प्रकार ५०० से २००० के बीच की जनसंख्यावाले गांव ही भारत में अधिक हैं।

गाँवों में जागर्ति की आवश्यकता

जैसा मैं लिख चुका हूँ कि भारतीय राजनीति और आर्थिक जीवन के लिए प्रमुख शब्द 'विकेंद्रीकरण' होना चाहिए। भारत का गाँव मूलतः अपरिवर्तनवादी प्रवृत्ति का है। बड़े बड़े साम्राज्य बने, बिगड़े पर भारतीय गाँव जैसे पहले थे आज भी हैं। भारत में ब्रिटिश शासन १५० वर्षों तक था पर सामान्य भारतीय ग्रामीण जनता के जीवन के संबंध में किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने में वह एकदम असमर्थ रहा। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद के वर्षों में विकास अवश्य हुआ है। गाँवों में नई पाठशालाएँ खुल गईं, भूमिसुधार संबंधी विधान बन गए, कृषिसंबंधी अन्वेषण और प्रयोगों के लिये केंद्र खुल गये, फलस्वरूप खेती के उपायों में सुधार हुआ है। गाँवों में बहुत सी सड़कें बन गई हैं। यह सब हुआ है, पर अभी समस्या का एक कोना ही छुआ गया है। गावों में नई जागर्ति का विकास अभी नहीं हो पाया है। रैयत के दृष्टिकोण में परिवर्तन तो जनसंपर्क से ही हो सकता है।

भूदान के माध्यम से विनोबा जी करोड़ों जनता से संपर्क स्थापित कर रहे हैं। भूदान आंदोलन इस दृष्टि से बेजोड़ है क्योंकि इसमें अधिक से अधिक मात्रा में जनता की इच्छाओं आकांक्षाओं के प्रकटीकरण का अवसर मिलता है। इसी प्रकार के जन आंदोलनों से ग्रामीण भारत में परिवर्तन हो सकता है। उसकी प्रगति की दिशा मोड़ देने के लिये भूदान आंदोलन इतिहास में अमर रहेगा।

जनसंख्या के आंकड़ों के विश्लेषण से भूमिहीन मजदूरों की वर्तमान स्थिति का चित्र सामने आता है। जनसंख्या प्रतिवेदन ने भारतीय जनसंख्या को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है:—

विनोबा जी का ग्राम प्रवेश

१. आयहीन आश्रित

२. कमाऊ आश्रित तथा

३. आत्मनिर्भर व्यक्ति

लगभग दो-तिहाई संख्या आयहीन आश्रितों की है। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार ३५ करोड़ ६६ लाख भारतीय जनसंख्या में २१ करोड़ ४३ लाख व्यक्तियों (६०. १ प्रतिशत) को आयहीन आश्रित बतलाया गया है। अपनी जीविका जुटाने में इनका कोई हाथ नहीं रहता। इन आयहीन आश्रितों में मुख्य रूप में स्त्रियाँ और बच्चे हैं, जिनका पालन उनके पति या पिता करते हैं। इनमें स्त्रियों और बच्चों की संख्या संमिलित नहीं है जो घर के खेतों में काम करते हैं, पर उसके लिये कोई मजदूरी नही पाते। नीचे ग्रामीण और नगरनिवासी जनसंख्या का लिंग-भेद के अनुसार विभाजन कैसे है, इसका लेखा दिया जा रहा है—

सारणी ४.

ग्रामीण नगरनिवासी आयहीन आश्रितों की लिंगानुसार संख्या[1]।

		इस श्रेणी का अनुपात	
ग्रामीण पुरुष	६ करोड़ ७४ लाख	४५. ३	प्रतिशत
नगर निवासी पुरुष	१ करोड़ ६५ लाख	४५. ६	,,
ग्रामीण नारियाँ	१० करोड़ ६५ लाख	७३. ५	,,
नगर की नारियाँ	२ करोड़ ५२ लाख	८८. १	,,

कुल जनसंख्या में ३ करोड़ ७६ लाख व्यक्तियों (या १०. ६ प्रतिशत) को कमाऊ आश्रित कहा गया है। वे आश्रित इस अर्थ में हैं कि अपने बूते पर वे अपना निर्वाह नहीं कर सकते। इनमें मुख्य रूप से सयानी स्त्रियाँ या बच्चे हैं—ये आयहीन आश्रित इस अर्थ में नहीं है कि या तो वे अपने भरण-पोषण के लिये आवश्यक आय का कुछ अंश कमा लेते हैं, या वे कृषि या गृहस्थी के धंधों जैसे बुनकरी आदि में सहायता करते हैं। जिनके लिये उन्हें कोई धन नहीं दिया जाता।

नीचे के आंकड़े लिंगानुक्रम से नगरों और गाँवों में आयवाले आश्रितों की संख्या बतलाते हैं।

१. सेंसस ऑव् इंडिया, १९५१ पृ० ९०।

सारणी ५.

लिंगानुक्रम से नागरिक और ग्रामीण कमाऊ आश्रितों की संख्या[1] ।

		इस श्रेणी का अनुपात	
ग्रामीण पुरुष	१ करोड़ १६ लाख	७. ९	प्रतिशत
नगरनिवासी पुरुष	१५ लाख	४. ६	,,
ग्रामीण नारियाँ	२ करोड़ ३२ लाख	१६.	,,
नगर की नारियाँ	१३ लाख	४. ५	,,

इस संख्या से यह विदित होगा कि आश्रितों की संख्या नगरों में गाँवों की अपेक्षा कम है, प्रतिशत भी। पुरुष और नारि दोनों में यही बात है। गाँवों में–विशेषकर स्त्रियाँ–इनकी संख्या पर्याप्त है। परिवार के जीवन-निर्वाह में इन कमाऊ आश्रितों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योग है। यदि भूदान आंदोलन और विनोवा के अन्य आर्थिक विचार प्रयोग में लाए जाँयं तो इन कमाऊ आश्रितों की संख्या लुप्त होकर आत्मनिर्भर की श्रेणी में जुड़ जाय।

भारत में आत्मनिर्भर व्यक्तियों की संख्या १० करोड़ ४० लाख है। इनका प्रतिशत अनुपात २९. ३ है। इन १० करोड़ ४० लाख व्यक्तियों का लिंगानुक्रम से ग्रामीण और नगरनिवासी वर्ग में विभाजन कैसे है, यह निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट होगा :—

सारणी ६.

लिंगानुक्रम से ग्रामीण और नगरनिवासी आत्मनिर्भर व्यक्तियों की संख्या[2] ।

		इस श्रेणी का अनुपात	
ग्रामीण पुरुष	७ करोड़ ६ लाख	४७. १	प्रतिशत
नगरनिवासी पुरुष	१ करोड़ ६६ लाख	४९. ८	,,
ग्रामीण नारियाँ	१ करोड़ ५१ लाख	१०. ४	,,
नगर की नारियां	२१ लाख	७. ४	,,

१. सेंसस ऑव इंडिया पृ० ९१।
२. वही, पृ० ९१

संपूर्ण आत्मनिर्भर व्यक्तियों में नारियों की संख्या षष्ठांश से कम है। गाँवों में ये षष्ठांश से अधिक पंचमांश से कुछ कम हैं। नगरों में लगभग अष्टमांश है।

कृषकों के व्यापार

इन आत्मनिर्भर व्यक्तियों की जीविका का साधन क्या है यह जानना महत्त्वपूर्ण है। नीचे लिंगानुक्रम से नगर और गाँवों में कृषकों और कृषकेतर व्यक्तियों के विभाजन के संबंध में आंकड़े दिये जा रहे हैं।

सारणी ७.

	कृषक प्रतिशत	कृषकेतर[1] प्रतिशत
ग्रामीण पुरुष	८०. २	१९. ८
नगरनिवासी पुरुष	११. ४	८८. ६
ग्रामीण नारी	८०. २	१९. ८
नगर की नारी	१९. ७	८०. ३

भारत के इन १० करोड़ ४४ लाखव्यक्तियों में ७ करोड़ १० लाख (६८. १ प्रतिशत) व्यक्ति कृषक हैं और ३ करोड़ ३४ लाख व्यक्ति (३१. ९ प्रतिशत) अन्य साधनों से जीविका चलाते हैं। इन कृषकेतर व्यक्तियों को संप्रति हम छोड़कर यह पता लगावें कि कृषक अपनी जीविका कैसे कमाता है। जन-गणना प्रतिवेदन में इसके आंकड़े दिए हुए हैं।

सारणी ८.

कृषकों की जीविका के वर्ग[2]

जीविका के वर्ग	संख्या	संपूर्ण कृषकों का प्रतिशत	संपूर्ण आत्मनिर्भर व्यक्तियों का प्रतिशत
१. संपूर्ण या मुख्यांश का स्वामी कृषक	४ करोड़ ५७ लाख	६४. ४	४३. ८

१. सेंसस ऑव् इंडिया, पृ० ९२।
२. वही, पृ० ९३।

२. संपूर्ण या मुख्यांश का स्वामित्वहीन कृषक	८८ लाख	१२. ३	८. ४
३. मजदूर कृषक	१ करोड़ ४९लाख	२१. ०	१४. ३
४. अकृषक भूस्वामी तथा अन्य कृषिजन्य लगान पानेवाले।	१६ लाख	२. ३	१. ६

इस आंकड़े से स्पष्ट होगा कि चौथे वर्ग के व्यक्ति, जिन्हें हम 'लगान-भोगी' भी कह सकते हैं, उनकी संख्या अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण है। १६ लाख मात्र (२. ३ प्रतिशत) प्रथम द्वितीय और तृतीय वर्गों में भेद करना आवश्यक है। भूदान-आंदोलन को समझने के लिये इनका उत्तर समझना और भी आवश्यक है। जनगणना प्रतिवेदन में कृषक मजदूरों को कृषकों के कर्मचारी के रूप में रखा गया है, जिनका काम इस रूप में शारीरिक श्रम करना है जिस रूप में मालिक करे।

कृषक मजदूर का स्थान

कृषक कृषि का प्रबंधक है। उनकी प्रत्यक्ष देखरेख में कृषि होती है जो कृषि का खतरा (रिस्क) उठाता है। कृषक मजदूर अपनी मजदूरी पाता है। कृषक मजदूर की जीविका कृषि पर व्यय हो जाती है। इस प्रकार ऊपर के आँकड़े से विदित होगा कि १९५१ की जनगणना के अनुसार कृषक मजदूरों की संख्या १ करोड़ ४९ लाख है। कृषिजीवी व्यक्तियों की संख्या में ये २१ प्रतिशत हैं। संपूर्ण कृषक जनसंख्या में इनका अनुपात पंचमांश से कुछ अधिक ही है।

कृषक मजदूर का आर्थिक स्थान बड़ा कमजोर है। केवल अपनी मजदूरी के अतिरिक्त कृषि से उसे कोई प्रेरणा नहीं मिलती। विनोबा जी चाहते हैं कि इस वर्ग को वह सभी भूमि दे दी जाय जो शेष तीनों वर्गों के व्यक्ति स्वेच्छा से दे सकें।

पिछले पृष्ठों में दिए गए ब्योरे हमें कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुँचाते हैं। ये भूदान ही नहीं सारे भारत की अर्थव्यवस्था के लिये बड़े महत्त्व के हैं। भारत की आर्थिक व्यवस्था के सुधार की किसी भी योजना में हमें इन मौलिक बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। इनके आधार पर ही देश की सुदृढ़ आर्थिक नीति का निर्माण हो सकता है। पहली बात तो यह विदित

होगी कि देश में प्रति व्यक्ति भूमि का औसत बड़ा ही कम है; केवल २. २५ एकड़ जो और भी कम हो जायगा, जब हम जलवायु आदि की दृष्टि से उपयोगी भूमि का वर्गीकरण करेंगे। फिर जीवन-ढंग को दृष्टि में रखते हुए हम देखते हैं कि भारत की अधिकांश जनता ग्रामीण है। केवल १७. ३ प्रतिशत भारतीय नगरों में रहते हैं। इसलिये ऐसी सभी आर्थिक योजनाओं का—जिनका उद्देश्य देश की जनता की आर्थिक उन्नति है — आधार गांव होना चाहिए। सारे आर्थिक और राजनीतिक सुधारों का उद्देश्य गाँव की अर्थव्यवस्था पर होना चाहिए। अंत में जीविका के साधनों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकांश भारतीय जनता भूमि पर निर्भर है, और उनमें २० प्रतिशत कृषक मजदूर हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि एक बड़ी संख्या में लोगों के पास भूमि नहीं है। भूदान आंदोलन का उद्देश्य भूमिहीन कृषक मजदूरों को भूमि देना है।

सप्तम अध्याय

भूदान-आंदोलन

विनोबा को ५ करोड़ एकड़ भूमि की आवश्यकता है। देश में ३० करोड़ एकड़ कृषि-योग्य भूमि है और प्रत्येक परिवार में औसतन पाँच सदस्य हैं। विनोबा ने अनुभव किया कि प्रत्येक परिवार अपनी जोतवाली भूमि का छठा अंश दान कर सकता है। भूदान के द्वारा शांतिपूर्ण उपायों से देश में क्रांति करने का यह उपाय है।

भारतीय संविधान के नीति-सिद्धांतों में यह लिखा है—"इस बात का प्रयत्न किया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले और इस बात के लिये कानून या आर्थिक संघटन या अन्य तरीकों से प्रयत्न किया जायगा कि सभी मजदूरों को जो कृषि में या कल-कारखानों में या अन्यत्र काम करते हैं, इतनी मजदूरी मिले कि उनका जीवननिर्वाह हो सके और उनके काम के घंटों में सुख मिल सके तथा उनका जीवन-स्तर ऊपर उठे।" पिछले अध्याय में हमने देखा कि देश की ८२. ७ प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है और कृषक मजदूरों की संख्या १ करोड़ ४६ लाख है, जो कृषिजीवी जनता की २१ प्रतिशत है। भूदान इन मजदूरों को स्वेच्छा से दान में प्राप्त भूमि में बसा देना चाहता है।

इन भूमिहीन मजदूरों को भूमि कैसे मिले? कम्युनिस्ट देशों में भूमि बलपूर्वक छीन ली गई। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारोंवाली धारा में लिखा है कि किसी की भूमि बिला मुआवजा नहीं ली जायगी। सत्य है कि मुआवजे की कोई दर नहीं दी गई है किन्तु मुआवजे की दर कम से कम रहने पर भी यह रकम करोड़ों रुपयों में जायगी। दूसरे देशों में यह आम धारणा है कि भारत में बिना मुआवजे के जमींदारी उन्मूलन कर दिया गया है। यह बात सचाई से कोसों दूर है।

मुआवजे की दर

प्रत्येक राज्य में मुआवजे की दर और उसकी अदायगी के प्रकार भिन्न हैं। मध्यवर्ती के अधिकारों की समाप्ति के लिये बने कई राज्यों के कानून का

हो जायगा वैसे वैसे कम्युनिज्म को रोकने के लिये भूदान के रास्ते अपनी भूमि-समस्या सुलझा सकता है। इस आंदोलन की सफलता अनोखी होगी।

भूमि-संबंधी आर्थिक विकास

भूमि-संबंधी भारतीय व्यवस्था आर्थिक कारणों से और इतिहास की आवश्यकतानुसार तीन स्थितियों से गुजर सकती है :—

१—अलाभकर भूमि-खंडों में निजी खेती।

२—सहकारी खेती।

३ – सामूहिक खेती।

भूमि-संबंधी आर्थिक व्यवस्था के विकास में जमींदारी उन्मूलन के अनंतर निजी खेती इसकी पहली स्थिति है। शीघ्र ही अनुभव हो जायगा कि पुराने और पिछड़े उपायों से खाद्योत्पादन भावी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त न होगा। धीरे धीरे सहकारी खेती की ओर बढ़ना चाहिए। इस प्रकार की खेती कुछ सीमा तक कम जोत की खेती के दुर्गुणों से परे होगी क्योंकि इसमें संपूर्ण गाँव के साधनों का सदुपयोग होगा। किंतु इस प्रकार की खेती में भी वैज्ञानिक खेती से जो लाभ होते हैं उसका पूर्ण रूप से फल न मिलेगा। अतः धीरे धीरे देश परिस्थितियों के कारण सामूहिक खेती की ओर बढ़ेगा, जिसमें भूमि का समाजीकरण होगा जो समाजवादी अर्थनीति का उद्देश्य है।

भूदान-आंदोलन का प्रभाव

भूदान आंदोलन यहाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकता है। उसके द्वारा निजी खेती से सहकारी या सामूहिक खेती के बीच का मार्ग प्रशस्त होता है क्योंकि यह भूमि से स्वामित्व की भावना मिटा रहा है। मेरे विचार से विश्व की कृषि-व्यवस्था के इतिहास में भूदान का यह महत्त्वपूर्ण योग है। रूस ने सामूहिक खेती का प्रारंभ एक लंबे और ऊपर से थोपे मार्ग से किया। भूदान आंदोलन यह विश्व को बतलाता है कि किस प्रकार घनी आबादी वाले अविकसित देशों में परस्पर सहयोग के आधार पर सामूहिक खेती का प्रचार किया जा सकता है। अतः भूदान-आन्दोलन विश्व के लिये एक ठोस शिक्षा भी दे रहा है, इस प्रकार यह प्रयोग अविकसित देशों में भूमि-समस्या के हल करने में किया जा सकता है। अहिंसा का आधार सत्य है। भूदान आन्दोलन सत्य पर आधृत है। विनोबा तो बस सत्य का प्रयोग कर रहे हैं।

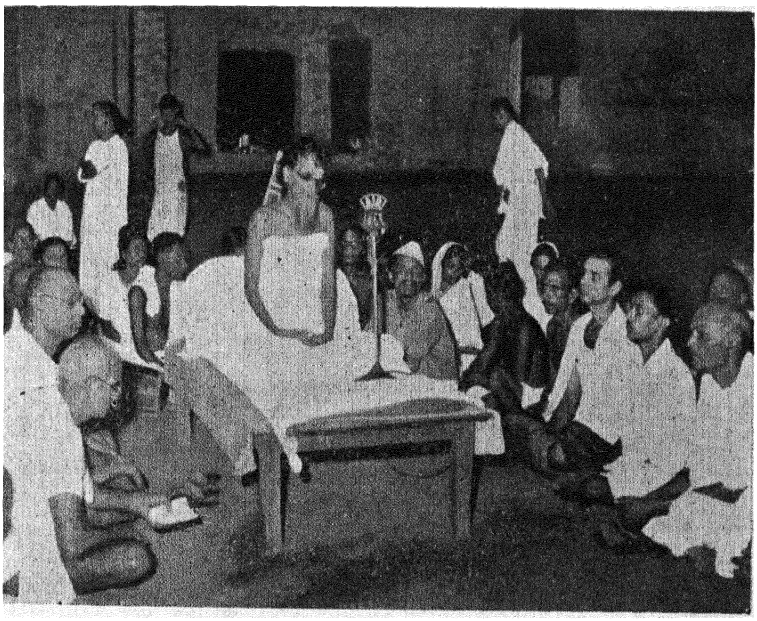

भूदान की व्याख्या

भूदान आंदोलन सहकारी ग्राम आंदोलन का मार्ग प्रशस्त करेगा। यह बात सच है कि अभी तक इस दिशा में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई है, पर इसका मूल कारण हमारे देश की जनता है, जिसमें अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझाने के लिये आत्मविश्वास और परस्परसहानुभूति नही है। भूदान आंदोलन ग्रामीण क्षेत्र में जिस वातावरण की सृष्टि कर रहा है, उससे भूमि व्यवस्था के क्षेत्र में क्रांति होने की संभावना है। इस क्रांति में कृषि सहकारी या सामूहिक ढंग पर होगी।

कांग्रेस भूमिसुधार समिति की इस संबंध में जो रिपोर्ट है वह बड़े काम की है। रिपोर्ट में कहा गया है :

हम इस बात से सहमत हैं कि जिस परती भूमि को जोत में लाया जा रहा है उसपर सामूहिक खेती के कुछ प्रयोग होने चाहिए। ऐसी भूमि में स्वामित्व की भावना नहीं रहती और इसे कृषि-योग्य बनाने में मशीनों के उपयोग की आवश्यकता होगी। ऐसी परिस्थिति में सामूहिक खेती से किसी प्रकार व्यक्ति-स्वातंत्र्य या उपज की वृद्धि की भावना को धक्का लगने की संभावना भी नहीं है। ऐसी सामूहिक भूमि में जो खेतिहर मजदूर बसेंगे उन्हें इस भूमि के प्रति उतना मोह न होगा जो सामान्य किसान को होता है। चाहे उसकी भूमि कितनी ही अल्प क्यों न हो। इसके विपरीत सामूहिक खेती से उनकी दशा में सुधार होगा, क्योंकि उनको ऐसी खेती में अधिक मजदूरी प्राप्त होगी। व्यवस्था के साथ ही लाभ में भी अंश प्राप्त होगा[1]।

भूदान की भूमि में भूस्वामित्व की भावना नहीं रहती। अतः सामूहिक खेती के लिये भूदान स्वर्णिम सुयोग उपस्थित करता है। अतः ऐसी भूमि में सामूहिक खेती की सफलता के प्रश्न पर यहाँ विचार करना लाभकर होगा।

राजनीतिक प्रभाव

राजनीति के क्षेत्र में विनोबा जी का भूदान आंदोलन कम्युनिस्ट कारवाइयों का तगड़ा उत्तर है। इस आंदोलन का उद्देश्य भूस्वामित्व के क्षेत्र में समता की प्राप्ति और राज्य के हस्तक्षेप के बिना शांतिपूर्ण ढंग से

[1] रिपोर्ट ऑव् द कांग्रेस एग्रेरियन रिफार्म्स कमिटी, आ. इ. कां. क. नई दिल्ली १९४५ पृ० १५।

जोतनेवालों को भूमि हस्तांतरित करना है। भारतीय संविधान में राज्य की नीति के विषय में जो निर्देशात्मक सिद्धांत निश्चित हुए हैं, उनमें निम्नलिखित बातें भी हैं :

१—संपूर्ण नागरिकों—नर-नारी—को जीविका के समुचित साधन की प्राप्ति का अधिकार है।

२—जाति के भौतिक साधनों का स्वामित्व और उनका नियंत्रण इस प्रकार होगा कि सर्वसामान्य का हित हो।

३—अर्थव्यवस्था का परिचालन इस प्रकार न होगा कि पूंजी और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के हितों के विरुद्ध कहीं ढेर लग जाय।

उपरिलिखित उपाय भूदान आंदोलन को सफल बनाने से अच्छी तरह कार्यान्वित किए जासकते हैं क्योंकि भूदान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में विकेंद्रीकरण तथा पूंजी को ग्रामीण जनता में वितरित करता है। भूदान आंदोलन ऐतिहासिक आवश्यकता है। इस बात में दो मत नहीं हो सकते कि देश की भावी प्रगति और समृद्धि भूमि-समस्या के शांतिपूर्ण समाधान पर निर्भर करती है। विनोबा एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करना चाहते हैं, जिसमें संविधान की सीमाओं को पार किया जा सके और जमीदारों को इस बात पर राजी किया जा सके कि पूरा मुआवजा न पाने पर भी उन्हें जो मिल रहा है, उसी में संतोष कर लें भूस्वामियों को संबोधित कर विनोवा जी ने कहा है:

यदि आप प्रेम और अहिंसा का मार्ग अपनाते हैं तो आपको भूमि के प्रति अपना मोह त्यागना होगा। अन्यथा हिंसा का जो युग आ रहा है वह भूमि का ही विनाश नहीं करेगा बल्कि उन लोगों को भी खत्म कर देगा, जो उसपर अधिकार किए हुए हैं। इसलिये हम यह अनुभव कर लें कि यह समस्या भगवान ने ही उत्पन्न की है। सुतराम् हमें तो केवल दान करना है। दिल खोलकर दान करना है।

युद्ध और हिंसात्मक क्रांति से यह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन उत्पन्न नहीं किया जा सकता। यह बुद्ध और ईसा तथा गीता के उपदेशों के मार्ग से

ही हो सकता है। विनोबा कहते हैं कि जब तक वर्तमान सामाजिक स्थिति, जिसका आधार असमानता, संघर्ष और मतभेद है, बदलकर समानता और सहयोग के आधार पर स्थापित नहीं की जाती मानव की मुक्ति नहीं हो सकती।

भूदान का आदर्श

भूदान-आंदोलन आदर्शमूलक क्रांति है। जब ऐसी क्रांति होती है तो समाज प्रगति की ओर अग्रसर होता है। भारत ने ऐसे सपूत उत्पन्न किये हैं जिन्होंने विशाल साम्राज्यों का परित्याग तृणवत् कर दिया है। भूदान-आंदोलन ऐसे ही आदर्शों की उपज है। इस आंदोलन का नैतिक और आध्यात्मिक आधार जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण है। विनोबा जी कहते हैं:

"लोगों को यह सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए कि सभी भूमि भगवान की है। यदि सारी भूमि का स्वामित्व समाज के हाथों में चला जाय तो आज जो इतना असंतोष है न रहे और प्रेम और सहयोग के युग का प्रारंभ हो जाय।"

विनोबा जी का विश्वास है कि वे परमेश्वर के निमित्त साधन मात्र हैं। यह परमेश्वर सारे युगों का स्वामी है। भूदान भगवान की प्रेरणा से ही उत्पन्न हुआ है, अन्यथा जो इंच भर भूमि के लिये झगड़ते हैं, वे सैकड़ों एकड़ भूमि कैसे स्वेच्छा से दान कर देते। विनोबा जी तो सब से अपील करते हैं कि वे भूदान आंदोलन को परमेश्वर की इच्छा ही समझें और अपनी भूमि दिल खोलकर प्रेमपूर्वक भूमिहीनों में बाँट दें।

विनोबा जी को सभी धर्म और वर्ग के लोगों ने भूमि दान में दी है—हिंदू, मुसलिम, धनी, निर्धन, हरिजन, ब्राह्मण। ये दानी सभी राजनीतिक दलों और जीवन के प्रत्येक स्तर के हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि दरिद्र नारायण को भी अपने परिवार का ही एक सदस्य माना जाय और उनका हिस्सा दानस्वरूप नहीं बल्कि अधिकारस्वरूप दिया जाय। लोगों ने इसी भावना से भूमि दी भी है।

समाज और व्यक्ति की शुद्धि के निमित्त प्राचीन ऋषिगण यज्ञ करते थे।

भूदान-यज्ञ निर्धनों का मुक्ति के निमित्त और धनवानों का स्वामित्व की भावना का परित्याग कर अपनी शुद्धि के निमित्त आवाहन करता है। भूदान आंदोलन की यही उपयोगिता है। कौन सा विधान इस वातावरण की सृष्टि कर सकता है ?

जोत की अंतिम सीमा

जोत की अंतिम सीमा निश्चित करने में भी भूदान बड़े काम का सिद्ध होगा। पंचवर्षीय योजना में यह बात निश्चयपूर्वक कह दी गई है कि भारतीय भूमि-नीति का एक मौलिक सिद्धांत यह भी होना चाहिए कि किसी व्यक्ति के पास कितनी भूमि रह सकती है। यह सीमा बल से निश्चित नहीं की जा सकती। भूमि के बंदोबस्त और कृषि के स्वरूप के अनुसार यह सीमा एक राज्य से दूसरे राज्य में घटती बढ़ती रहेगी। विनोबा का मत है कि भूमिहीनों में भूमि के पुनर्वितरण के लिये केवल जोत की अंतिम सीमा निर्धारित कर देना ही पर्याप्त न होगा। राज्य बड़े कृषि-क्षेत्रों का क्षेत्रफल न बांध दे। उदाहरणार्थ राज्य को चाहिए कि वह उस परिवार को जो स्वयं कृषि करना चाहता है लगभग ५ एकड़ भूमि दे दे। यदि इस प्रकार वितरण के उपरांत भूमि बच जाय तो उस बची हुई भूमि में जोत की अंतिम सीमा निर्धारित की जा सकती है।[1]

जनसंख्या के दबाव के कारण भारत में भूमि के टुकड़ों का क्षेत्रफल छोटा है। प्रत्येक प्रांत में किस परिवार के पास कितनी भूमि है इसके संबंध में विश्वस्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, किंतु इसमें संदेह नहीं कि अधिकांश परिवारों में लाभकर कृषि-योग्य खेत नहीं होता। नीचे दिए आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगा कि छोटे छोटे भूखंडों की ही बहुतायत है।

[1] श्रीमन्नारायण अग्रवाल सीलिंग्स आव लैंड ए. आई. सी. सी. इकनामिक रिव्यू १५ अक्तूबर १९५३।
कांग्रेस एग्रेरियन रिफार्म कमेटी देखो. पृ० १४।

सारणी सं० ६

विभिन्न क्षेत्रफल के खेतोंवाले परिवारों का प्रतिशत

राज्य	दो एकड़ से कम भूमिवाले परिवार	२-५ एकड़ भूमिवाले परिवार	५-१० एकड़ भूमिवाले परिवार	१० एकड़ से अधिक भूमिवाले परिवार
आसाम	३८. ६ प्रति०	२७. ४ प्रति०	२१. १ प्रति०	२४. ५ प्रति०
बिहार	अनुपलब्ध	—	—	—
बम्बई गुजरात	२७. ५	२५. ७	२२. ३	२४. ५
(दकन)	१६. ८	१६. ७	१८. ८	४४. ७
कर्नाटक	१२. २	१६. २	२१. ७	४६. ६
पश्चिमी बंगाल	३४. ७	२८. ७	२०.	१६. ६
मध्यप्रदेश	४६.	—	२१.	३०
उड़ीसा	५०	२७	१३	१०
मदरास	५१.	३१	७	११
उत्तरप्रदेश	५५. ८	२५. ४	१२. ८	६

भूमिधरी का क्षेत्रफल इतना छोटा है कि जोत की अंतिम सीमा निर्धारित कर देने से काम न चलेगा। दो मोटे मोटे सिद्धान्त ऐसे प्रगट होते हैं, जिनके प्रकाश में इस प्रश्न को देखना चाहिए :

१—भूमि के उपयोग का अधिकार उसका है, जो अपने परिश्रम से खेती करता है और

२—कृषकों में भूमि के पुनर्वितरण का आधार समता और प्रत्येक व्यक्ति के जोतने की क्षमता होना चाहिए।

यदि उक्त दोनों तथ्य देश की भावी नीति के रूप में स्वीकृत कर लिए जायँ तो इनसे ही एक तीसरा निष्कर्ष निकलेगा:

३—कानून कृषि में स्थानीय मौसमी अवसरों के अतिरिक्त अन्य किराये के मजदूरों को स्वीकृति न देगा।

स्पष्ट है कि जब तक आप भविष्य की भूमि-व्यवस्था संबंधी नीति निर्धारित नहीं कर लेते तब तक जोत की सीमा के निर्धारण पर वाद-विवाद करने से कोई लाभ न होगा। जोत की अंतिम सीमा के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति के विचार उसकी पार्टी के अनुसार अलग अलग होंगे।

निरपेक्ष भाव से यहाँ हम विचार यह करें कि भारत में जोत की अंतिम सीमा का आधार (१) श्रमिकों का स्तर हो या (२) उपभोक्ताओं का स्तर हो। श्रमिकों के स्तर के आधार पर जोत की अंतिम सीमा का मजदूरों की संख्या (नारियां और युवा दोनों ही इसमें संमिलित हैं यदि वे कृषि में काम करते हैं और उनकी गणना पूरे पूरे मजदूर की होती है) पर निर्भर करती है। उपभोक्ता के स्तर के आधार पर जोत की सीमा का निर्धारण भोजन करनेवालों (नन्हें बच्चों, बूढ़ों और अशक्तों को सम्मिलित करके) की संख्या पर निर्भर करती है। इसमें प्रथम समस्या को प्रत्येक परिवार की उत्पादन की क्षमता के दृष्टिकोण से देखता है तथा दूसरा प्रत्येक परिवार के खर्च की आवश्यकता के दृष्टिकोण से। इसमें किसी को भी स्वीकार या इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें दोनों के अपने अपने गुण-दोष हैं। फिर भी आबादी के घनत्व को दृष्टि में रखकर श्रमिक स्तर के आधार पर जोत की सीमा निर्धारित की जा सकती है जिसमें प्रत्येक कार्यकर्ता को उतनी ही भूमि दी जाय जितने में वह स्वयं खेती कर सकता हो। इससे किराये पर रखे जाने वाले मजदूरों की समस्या का अंत हो जायगा। इसके फलस्वरूप धीरे धीरे ग्राम्य अर्थव्यस्था से भूमिहीन मजदूर निकल जायंगे। यदि इस प्रकार की व्यवस्था में परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरी पूरी उपज न हो तो उत्पादन के पूरक स्वरूप दूसरे जीविका के सहायक साधन अपनाए जा सकते हैं। संभवतः ऊपर के विश्लेषण से हमें निरपेक्ष भाव से भूमि के स्वामित्व की सीमा निर्धारित करने और इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था की सिद्धि में सहायता मिलेगी।

विनोबा का आंदोलन घोषित करता है कि भूमि उसीकी है जो उसे जोतता है। इससे श्रम के आधार पर जोत की सीमा के निर्धारण में सहायता मिलेगी।

भूदान और भूमिसुधार-कानून

हाल में भूमिसुधार के जो कानून बने हैं उनको लागू करने के लिए वातावरण बनाने में भूदान-आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण सहायता की है। कानून बनने के बाद ही जमीदारों ने उनकी रचना के अधिकार के संबंध में कानूनी आपत्तियाँ उठाई थीं। न्यायालयों में उनकी वैधता को चुनौती दी गई थी। मुकदमेबाजी में समय बरबाद न हो इसे रोकने के लिए संसद् ने जून

१९५१में संविधान में संशोधन (प्रथम) १९५१ पास कर दिया और संविधान में ३१ अ की एक धारा जोड़ दी गई कि राज्य द्वारा किसी की संपत्ति के हस्तगत करने के लिए निमित्त किसी कानून को इस आधार पर शून्य घोषित नहीं किया जा सकता कि वह संविधान के अंतर्गत किसी मौलिक अधिकार की मंशा के विरुद्ध है।[1]

यदि इन कानूनों की रचना के पूर्व भूदान-आंदोलन का प्रारंभ हो चुका होता तो जमींदारों की ओर से जो इतना उग्र विरोध हुआ वह न होता। और बहुत कुछ मुकदमेबाजी भी रुक जाती क्योंकि वही जमींदार जो उस समय इन सुधारों के विरोधी थे संपत्तिदान और भूदान के जबर्दस्त समर्थक हैं। जमींदारों ने राजा महाराजाओं की भांति समझ लिया कि भविष्य में भूमि-प्रबंध का स्वरूप पुराने स्वरूप से एकदम भिन्न होगा। सच तो यह है कि उन्होंने भूदान में बड़े बड़े दान दिए हैं। विनोबा जी के मई १९५५ तक भूदान में प्राप्त भूमि का योग सारिणी सं० १० में दिया जा रहा है।

सारणी सं० १०

भूदान में प्राप्त भूमि और उसका वितरण

राज्य	भूदान में प्राप्त भूमि एकड़ों में	भूमि वितरित एकड़ों में	भूदान प्राप्त करने-वाले परिवार
बिहार	२३, ३०, ५५४	३१, १२३	११, ३६४
बंगाल	६, ७३१	१, १६७	६५७
पंजाब	१२, ६५०	३२५	६६
हैदराबाद	१, ०६, ८९८	३२, ०१९	६, ८६२
मैसूर	६, ६८, ०२८	...	...
विंध्यप्रदेश	६, १९८	६५०	२२५
उत्तरप्रदेश	५, ४२, २३३	९०, ४३६	२७, ८७०

[1] विवाद का अंत यहीं नहीं हुआ। जमींदारों ने संविधान के किए गए इस संशोधन की वैधता को भी सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी कि इस कानून के निर्माण की प्रक्रिया असंवैधानिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक मत से संशोधन के कानून को वैध ठहराया और बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश राज्यों द्वारा भारतीय कानूनों को पूर्णतः संवैधानिक माना।

राजस्थान	३, ४५, ८१६	७, ७६२	१, ५११
उड़ीसा	१, ४१, ६८६	३, ०८१	७४९
मध्यप्रदेश	६९, २३, ७४१	३४, ०८१	५, ६६२
सौराष्ट्र	४१, ०००	१, ५००	...
मध्यभारत	५१, ६८७	३११	१, ०११
गुजरात	३७५	३, २३५	१, ०११
तामिलनाड	३२, ४६७	५३०	१६१
आंध्र	२१, ४११	१६	३८
केरल	२८, ११३	...	...
महाराष्ट्र	२८, ०००	१, ००१	...
दिल्ली	९, २४५	९०	२५
कर्नाटक	२, ८०३	...	...
हिमाचल प्रदेश	२, २०५	...	...
आसाम	१, ६५०	...	...
बंबई	१२३	...	...
	३, ७५८, ६६२	१, ६७, ४३०	५६, ५६१

भूमि-वितरण के लिये नियम

हैदराबाद, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार के राज्यों ने भूदान के कार्य को सुकर करने के लिये कानून बना दिए हैं। भूदान में प्राप्त भूमि के वितरण के लिये प्रांतीय और मांडलिक समितियां हैं। बिहार में भूमि के वितरण के लिये निम्नलिखित नियम बनाए गए हैं।

१—जिस गांव में भूमि-वितरण करना हो उसे इसके लिए निश्चित तिथि की पूर्वसूचना एक सप्ताह पूर्व डुग्गी से दे दी जाय। इस बात का ध्यान रखा जाय कि प्रत्येक ग्रामीण को इसका पता लग जाय।

२—भूमि-वितरण की तिथि से एक दिन पूर्व फिर सूचना दी जाय। जिला मजिस्ट्रेट और अन्य अधिकारियों को भी कार्यक्रम की सूचना दी जाय ताकि उनके प्रतिनिधि भी वितरण के समय उपस्थित हो सकें।

३—भूमि-वितरण करनेवाले सज्जन गांव-सभापति और पटवारी से मिलकर वितरित की जानेवाली भूमि के संबंध में ब्योरेवार जानकारी प्राप्त कर लें। भूमि की स्थिति, उसकी किस्म और उसका मूल्य जानने का भी यत्न करना चाहिए।

४—संपूर्ण गांव की सभा बुलाई जाय और उसमें यह पता लगाया जाय कि गांव में भूमिहीन कौन हैं?

५—ग्रामवासियों की साधारण सभा में ही भूमि का वितरण किया जाय।

६—जहां तक संभव हो वितरण सर्वसम्मति से किया जाय। यदि वितरण के संबंध में मतभेद हो तो भूमिहीनों को ही आमंत्रित किया जाय कि वे स्वयं बतलाएँ कि किसे भूमि दी जाय। विनोबा जी के प्रतिनिधी को गुप्त मतदान के द्वारा अपना निर्णय देने का अंतिम अधिकार है।

७—भूमि-वितरण में स्थानीय सज्जनों और महाजनों की सहायता भी ली जाय ताकि भविष्य में और भूमि प्राप्त होने का वातावरण बने।

८—जहां तक संभव हो कुल भूमि का एक तिहाई हरिजनों को अवश्य दिया जाय।

९—जहां तक संभव हो उसी गांव के भूमिहीनों को भूमि वितरित की जाय। यदि भूदान में कोई बहुत बड़ा खेत मिल गया हो और उस गांव के भूमिहीनों में भूमि वितरित करने के उपरांत भी कुछ भूमि बच जाय तो वह पड़ोस के गांव के भूमिहीनों को दी जा सकती है। बड़े बड़े खेतों में बाहरी लोगों को भी बसाया जा सकता है।

१०—सामान्यतया जोतने के लिए भूमि उन भूमि-हीनों को ही दी जाय जिनके पास और कोई दूसरा साधन नहीं है, और जो उसमें स्वयं खेती करेंगे। नई बस्ती बसाने के लिए भी जमीन दी जा सकती है बशर्ते इससे गांव सुंदर, सुसंगठित और आत्मनिर्भर हो। ऐसी परिस्थिति में नियमों में आवश्यक परिवर्तन किये जासकते हैं।

११—सामान्यतया ऐसे परिवारों के, जिसके पांच सदस्य हों, सिंचाई-वाली १ एकड़ भूमि या २.५ से ५ एकड़ सूखी भूमि दी जासकती है। विशेष परिस्थिति में ५ एकड़ भूमि से भी अधिक भूमि दी जा सकती है।

१२—भूदान में भी यदि छोटे छोटे टुकड़े मिले हों तो प्रयत्न इस बात का करना चाहिए कि उनके बदले में बड़े टुकड़े मिल जांय। यदि ऐसे छोटे टुकड़ों को लेने के लिए गाँव में कोई भूमिहीन न हो तो उन्हें जिनके पास कम भूमि हो, उन्हें दे देना चाहिए। यदि यह भी संभव न हो तो ऐसे छोटे टुकड़े सार्वजनिक उपयोग के लिये छोड़ दिए जाँय। उसमें कंपोस्ट खाद के गढ़े खोद दिए जाँय या शौचालय बनवा दिए जाँय।

१३—जिन्हें भूमि दी गई है वे उसका विक्रय या रेहन नहीं कर सकते।

१४—यदि उस भूमि पर कोई सरकारी लगान हो तो उसे जोतनेवाला देगा।

१५—यदि भूमि लेनेवाला दो वर्ष तक लगातार उसमें खेती न करे तो समिति को अधिकार होगा कि उससे भूमि वापस लेकर दूसरे भूमिहीनों में वितरित कर दे।

१६—उपर्युक्त वितरण के अनंतर भी यदि गाँव में कोई भूमिहीन बच रहता है तो उसे भी भूमि दिलाने का यत्न करना चाहिए।

१७—परती भूमि को खेत बनाने के लिये ३ वर्ष का समय दिया जाना चाहिये।

१८—यदि अन्य किसी प्रकार की कठिनाई वितरण में होती है तो योजना को सफल बनाने के लिये प्रांतीय समिति जो कारवाई उचित समझेगी करेगी।

१९—वितरण की उपर्युक्त योजना सफलतापूर्वक कार्य कर रही है और अब तक हजारों एकड़ भूमि का वितरण किया जा चुका है। जिन्होंने भूदान में भूमि प्राप्त की है उनके लिये नए जीवन के संबंध में आशा की नई किरण फूट रही है। भूदान आंदोलन में जो भूमि देता है, वह भी धन्य है और जो भूमि प्राप्त करता है वह भी धन्य हो जाता है।

———

अष्टम अध्याय

जनसंख्या और खाद्य-पूर्ति

भारतीय संविधान में लिखा है कि राज्य जनता के आहार और जीवन-स्तर को उन्नत करना तथा स्वास्थ्य-संवर्धन अपने प्राथमिक कर्तव्यों में समझेगा। इसलिये राज्य का आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह ऐसे कार्य करे जिससे जनता को पर्याप्त भोजन प्राप्त हो सके।

इस अध्याय का उद्देश्य जनता और खाद्यपूर्ति की समस्या का परीक्षण कर यह देखना है कि खाद्य-संकट दूर करने के लिये कृषि-उत्पादन की अभिवृद्धि में भूदान-आंदोलन क्या सहायता कर सकता है। इसके लिये हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि हमारी जनसंख्या में किस अनुपात से वृद्धि हो रही है।

पिछले ३० वर्षों में भारत की जनसंख्या में जिस अनुपात से वृद्धि हुई है, भावी वृद्धि भी लगभग उसी अनुपात से होगी। १८९१ ई० से १९५१ के काल को हम सुविधापूर्वक दो खंडों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम खंड १८९१ से १९२१ और दूसरा १९२१ से १९५१ ई०। इनमें हम पिछले ६० वर्षों में हुई जनसंख्या की वृद्धि की तुलना करेंगे। १९२१ ई० को विभाजक वर्ष मानना केवल सुविधाजनक ही नहीं है बल्कि आवश्यक भी है। १९११ से १९२१ के बीच भारत की जनसंख्या सचमुच ९ लाख घट गई थी। तब से अब तक संख्या बाढ़ पर है। १८९१ से १९२१ के बीच भारत की जनसंख्या में १ करोड़ २२ लाख की वृद्धि हुई है। १९२१ से १९३१ के बीच २ करोड़ ७४ लाख जनसंख्या बढ़ी। अर्थात् १८९१ से १९९१ के बीच हुई वृद्धि से दूने से भी अधिक की वृद्धि हुई। १९३१ से १९४१ के बीच ३ करोड़ ७३ लाख की वृद्धि हुई। अर्थात् इस काल में १८९१ से १९२१ के बीच हुई वृद्धि की तीन गुनी से अधिक वृद्धि हुई। १९४१ से १९५१ के पिछले दशाब्द में पिछली सभी दशाब्दियों से अधिक वृद्धि हुई, ४ करोड़ ४१ लाख की। यह वृद्धि आज बिहार की जितनी जनसंख्या है, उससे भी अधिक है। नीचे इस संबंध के आँकड़े दिए जा रहे हैं :

सारणी सं० ११—

भारतीय जनसंख्या में दशाब्दिक्रम से वृद्धि[1]

जनगणना का वर्ष	जनसंख्या	विगत दशाब्दी में वृद्धि
१८९१	२२ करोड़ ५९ लाख	—
१९२१	२४ करोड़ ८१ लाख	१ करोड़ २२ लाख
१९३१	२७ करोड़ ५५ लाख	२ करोड़ ७४ लाख

१९४१	३१ करोड़ २८ लाख	३ करोड़ ७३ लाख
१९५१	३५ करोड़ ६९ लाख	४ करोड़ ११ लाख

वृद्धि का "दशाब्दी में वृद्धि का मध्य-परिमाण[२]" १९२१-३१ में १०. ४ प्रतिशत, १९३१-४१ में १२. ७ प्रतिशत १९४१-५१ में १३. ७ प्रतिशत रहा।

इस प्रकार १९२१-५१ के बीच मोटे तौर पर भारत की जनसंख्या २५ करोड़ से ३६ करोड़ हो गई। यह ११ करोड़ की वृद्धि संख्या में उतनी ही है, जितनी उत्तर भारत और मध्य भारत की या पश्चिम भारत और दक्षिण भारत की संयुक्त जनसंख्या है।

यहाँ अमेरिका में "दशाब्दी में वृद्धि का मध्यपरिमाण" संबंधी आँकड़े देना मनोरंजक होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि १९१० में अमेरिका में १९ प्रतिशत, १९२० में १३. ९ प्रतिशत १९३० में १४. ९ प्रतिशत १९४० में ७ प्रतिशत १९५० में १३. ५ प्रतिशत की वृद्धि जनसंख्या में हुई। इंगलैंड में ४० से ५० वर्ष के बीच ९. ६ प्रतिशत तथा पिछली दशाब्दी में ४. ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। जापान में भी यह दर निरंतर बढ़ती गई है, लगभग १४. प्रतिशत।

जनसंख्या में समानुपातिक वृद्धि और कृषि

भारत में जनसंख्या की वृद्धि जिस दर से हो रही है वह घबरा देनेवाली है और हमें यह सोचने के लिये विवश करती है कि संख्या की दृष्टि से देश जा किधर रहा है। यदि यह वृद्धि इसी अनुपात में होती रही तो क्या देश वृद्धिगत जनसंख्या के लिये पर्याप्त भोजन उत्पन्न कर सकेगा। प्रति व्यक्ति जोत के अनुपात के आँकड़ों का विवेचन हमें यह बतलाएगा कि हमारी जोत में भी उसी अनुपात से वृद्धि हो रही है या नहीं। जनगणना आयुक्त ने १९ करोड़ की जनसंख्यावाले ६ राज्यों के १८ डिवीजनों की १९२१ और १९५१ में प्रति व्यक्ति जोत का अनुपात इस प्रकार प्रकाशित किया है।

१ भारतीय जनगणना १९५१ पृ० १२२।

२ "दशाब्दी में वृद्धि का मध्यपरिमाण से तात्पर्य दशाब्दी में जन्म और मृत्यु के मध्य परिमाण में अंतर से है।

सारणी सं० १२ अ

१९२१ और १९५१ में जोती गई और सिंचित भूमि में प्रति व्यक्ति की जोत का औसत[1]

राज्य और डिवीजन	प्रतिव्यक्ति जोत की भूमि का क्षेत्रफल		दो फसलोंवाली भूमि में प्रति व्यक्ति की जोत का औसत		सिंचित भूमि में प्रति व्यक्ति की जोत का औसत	
	१९२१	१९५१	१९२१	१९५१	१९२५	१९५१
मदरास						
मदरास-दक्कन	१९७	१४७	८	८	१६	१४
पश्चिमी मदरास	४४	३२	११	८	—	—
उत्तरी मदरास	७८	५६	१७	१२	३२	२७
दक्षिणी मदरास	६५	४४	९	७	१९	१७

[1] जनगणना रिपोर्ट १९५१ पृ० १४८।

राज्य और डिवीजन	प्रतिव्यक्ति जोत की भूमि का क्षेत्रफल		दो फसलोंवाली भूमि में प्रति व्यक्ति की जोत का औसत		सिंचित भूमि में प्रति व्यक्ति की जोत का औसत	
	१९२१	१९५१	१९२१	१९५१	१९२१	१९५१
मैसूर	१०५	७०	४	५	१६	१३
मध्यप्रदेश						
उत्तरी पश्चिमी मध्यप्रदेश	१८५	१४३	९	११	२	३
पूर्वी मध्यप्रदेश	१३८	११३	३३	३३	१२	२०
दक्षिणी पश्चिमी मध्यप्रदेश	२११	१५६	१	२	२	२
उत्तरप्रदेश						
हिमालयी उत्तरप्रदेश	६०	७०	१०	१०	१७	७
पूर्वी उत्तरप्रदेश का मैदान	६७	५३	२१	१७	२५	१९
मध्य उत्तरप्रदेश का मैदान	७२	५५	१९	१४	२५	१६
पश्चिमी उत्तरप्रदेश का मैदान	८४	६५	१८	१५	२७	२१
उत्तरप्रदेश के पहाड़ी और पठारी क्षेत्र।	१३०	११२	१६	१४	१३	१५
पंजाब						
हिमालयी पंजाब	६२	४९	३३	२८	२२	१८
पंजाब के मैदान	१२१	९९	२५	१८	३७	४०

ऊपर के आँकड़ों (सारणी सं० १२ अ) से प्रकट होगा कि हिमालयी उत्तर-प्रदेश जिसकी जनसंख्या २५ लाख है एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ सामान्य से थोड़ा अपवाद अर्थ में है कि यहाँ प्रति व्यक्ति जोत की भूमि का क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कुछ अधिक है। अन्य सभी डिवीजनों में यह तथा तीनों अन्य बातों की निश्चित रूप से कमी है।

अन्य राज्य के आँकड़ों से भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति के लक्षण प्रतीत होंगे जैसा आगे की सारणी १२ ब से प्रकट होगा।

सारणी सं० १२ (ब)

१९२१ और १९५१ में प्रति व्यक्ति सिंचित और सूखी[1] भूमि का क्षेत्रफल

(शत में)

मंडल और राज्य	प्रति व्यक्ति जोत की भूमि का क्षेत्रफल		प्रति व्यक्ति दो फसलों-वाली भूमि का क्षेत्रफल		प्रति व्यक्ति सिंचित भूमि का क्षेत्रफल	
पूर्वी भारत	१९२१	१९५१	१९२१	१९५१	१९२१	१९५१
बिहार	७१	५७	१९	१६	१४	१४
पश्चिमीबंगाल	५१	४५	६	६	११	८
उड़ीसा	११६	८३	७	८	१५	१३
असम	६५	५८	७	९	५	१३
दक्षिण भारत						
ट्रावनकार-कोचीन	४९	३०	५	९	२७	१०
कूरंग	८७	७१	१	...	२	३
उत्तर पश्चिमी भारत						
पटियाला और—						
पूर्वी पंजाब राज्य	१५३	१२२	२६	१६	४६	५४
दिल्ली	४१	१२	१२	३	१०	३
अजमेर	७३	६०	१३	७	२२	१५

[1] सेंसस ऑव् इंडिया रिपोर्ट १९५१ पृ० १४९।

जनसंख्या तथा १९२१ और १९५१ के बीच जोत की भूमि के क्षेत्रफल के अध्ययन से दो प्रमुख निष्कर्ष निकलते हैं :

१—१९२१ से १९५१ के बीच के तीन दशकों में जनसंख्या बड़ी तेजी से और अबाध रूप से बाढ़ पर रही है। इस दृष्टि से पूर्व के तीन दशकों की वृद्धि से उसका भेद है क्योंकि उन दशकों में जनसंख्या में वृद्धि मंद और बाधित थी।

२—जोत में आई भूमि के क्षेत्रफल में १९२१-५१ के बीच वृद्धि हुई है। वृद्धि फसली भूमि और सिंचित भूमि दोनों के क्षेत्रफल में हुई है पर यह वृद्धि बड़ी मंद है। किंतु यदि इस वृद्धि की जनसंख्या की वृद्धि की गति से तुलना करें तो भेद और भी अधिक होगा। पिछले तीन दशकों में तीनों प्रकार की जोत की भूमि के प्रति व्यक्ति औसत में धीरे धीरे उतार हो रहा है। यह निष्कर्ष देश के किसी एक भाग पर ही नहीं अपितु सारे देश पर लागू होता है।

खाद्य-संभरण और जनसंख्या में वृद्धि

१९२१ और १९५१ के बीच खाद्य संभरण के विचार से जनसंख्या में हुई वृद्धि की ओर इशारा करके हम १९५१ से १९८१ के बीच के होनेवाली भावी वृद्धि का परीक्षण कर यह पता लगाएं कि इन तीन दशकों में खाद्य संभरण में कितनी कमी होगी? आँकड़ों के अभाव में भारत की जनसंख्या में होनेवाली भावी वृद्धि को ठीक ठीक बता सकना तो बड़ा मुश्किल है फिर भी वृद्धि का एक स्थूल अनुमान तो हम कर ही सकते हैं जो वास्तविकता के निकट होगा। जनगणना आयुक्त ने अपने १९५१ के प्रतिवेदन में १९५१-८१ के बीच होनेवाली भारत की जनसंख्या की वृद्धि का अनुमान करने का यत्न किया है। उनके निष्कर्षों का आधार ठोस है और वे गति का लगभग सही अनुमान कर सके हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि जनसंख्या की वृद्धि का अवरोध नहीं होता—जो गर्भावरोध से संभव है या खाद्य संभरण में ऐसी गंभीर कमी से, जिससे १८९१-१९०० जैसी असामान्य मृत्यु-वृद्धि हो गई थी–तो १९५१-८२ के बीच १९२१-५१ से भी तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि होगी।

१९५१ से १९८० तक के तीन दशकों में भावी जनसंख्या में वृद्धि का अनुमान लगाते समय हम यह तो कह सकते हैं कि यह वृद्धि (अ) उसी गति से होगी, जिस गति से १९२१ से १९५० के बीच हुई अथवा (ब)

उस गति से होगी, जिससे १९४१ से ५० के बीच हुई, जब वृद्धि सबसे अधिक हुई। इन दो अनुमानों के आधार पर हम जनसंख्या में भावी वृद्धि की गति के दो छोरों पर पहुँच जाते हैं जिनमें एक अल्पतम और दूसरा अधिकतम वृद्धि को सूचित करता है। नीचे सारिणी संख्या १३ में ये फल दिए जाते हैं :

सारणी सं० १३

भावी जनसंख्या में वृद्धि की सीमाएँ[1]

करोड़ों में

सन्	न्यूनतम सीमा	अधिकतम सीमा
१९५१	३६. १३	३६. १३
१९६१	४४. ७७	४१. १९
१९७१	४५. ८५	४६. ९७
१९८१	५२. ७६	५३. ५५

जनगणना-आयुक्त ने अनेक कारणों की परीक्षा के उपरांत यह अनुमान किया है कि जनसंख्या में भावी वृद्धि निम्नलिखित प्रकार से होगी :

सन्	जनसंख्या (करोड़ों में)
१९५१	३६
१९६१	४१
१९७१	४६
१९८१	५२

उपर्युक्त आंकड़ों को ध्यान में रखते हुए हम इस बात का पता लगाने का यत्न करेंगे कि हमारे देश में कृषि भी क्या इसी अनुपात से विकसित होगी जिस अनुपात से वृद्धि हो रही है ? यदि हम यह मान लें कि दोनों बातों, गर्भावरोध और असामान्य प्राकृतिक प्रकोप जिनसे जनसंख्या घटती है, का संयोग नहीं होगा। अतः हमें कृषि का विकास इस प्रकार करना है कि १९८१ ई० में हम ५२ करोड़ व्यक्तियों को भोजन दे सकें।

[1] सेंसस ऑव् इंडिया रिपोर्ट १९५१ पृ० १०९

अब हम १९५० से १९८१ के बीच कृषि के उत्पादन की संभावनाओं पर बारीकी से विचार करें। प्रारंभ में ही यह बतला देना आवश्यक है कि १९२१ से १९५१ के तीन दशकों के बीच प्रति व्यक्ति जोत की भूमि के परिमाण में क्रमशः ह्रास होता आ रहा है और अन्न उत्पादन में कमी भी बढ़ती जा रही है। यह माना जा सकता है कि १९५१ में भारत में औसतन ५ करोड़ ५६ लाख टन अन्न का उत्पादन हुआ। इस आंकड़े का आधार १९५१ से पूर्व ही के पाँच वर्षों में अन्न के उत्पादन का औसत है। जितनी भूमि में खेती हुई उसके ७८ प्रतिशत में अन्न का उत्पादन हुआ। अतः प्रति वर्षों का उत्पादन कुल ७ करोड़ टन हुआ।

१९५१ ई० में इस बात का अनुमान किया गया था कि प्रतिवर्ष ३४ लाख टन अन्न की कमी है। अतः हम भलीभाँति अनुमान कर सकते हैं कि मोटे तौर पर प्रति वर्ष साढ़े सात करोड़ टन अन्न की आवश्यकता ३६ करोड़ व्यक्तियों को भोजन और वस्त्र देने के लिये होती है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि हमें प्रति २४ व्यक्ति प्रति वर्ष ५ टन की आवश्यकता होती है। नीचे की सारणी संख्या १४ में यह बतलाया जायगा कि १९६०, १९७१, १९८१ में हमें कितने खाद्य-उत्पादन की आवश्यकता होगी और खाद्य उत्पादन में कितने विकास का लक्ष्य रखा गया है।

सारणी सं० १४

जनसंख्या में वृद्धि और कृषि-विकास की आवश्यकता

सन्	जनसंख्या (करोड़ों में)	आवश्यक कृषि-उत्पादन प्रतिवर्ष लाख टनों में	कृषि उत्पादन में विकास का लक्ष्य प्रतिवर्ष लाख टनों में
१९६१	४१	८५०	१५०
१९७१	४९	९६०	२६०
१९८१	५२	१०८०	३८०

यदि उपर्युक्त फल को १९५१ के कृषि-उत्पादन के स्तर से प्रतिशत रूप में कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि १९६१ से पूर्व २१ प्रतिशत १९७१ से पूर्व ३७ प्रतिशत और १९८१ से पूर्व ५४ प्रतिशत वृद्धि की आवश्यकता है। १९५१ में ७ करोड़ टन का उत्पादन हुआ था।

क्या हमारे कृषि उत्पादन में वृद्धि इस मात्रा में संभव है।[1]

यहाँ कृषि-उत्पादन में वृद्धि के विभिन्न उपायों की परीक्षा के लिये उपयुक्त अवसर नहीं है। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने कृषि उत्पादन को प्राथमिकता दी थी। संपूर्ण योजना के व्यय का ४५ प्रतिशत कृषि सिंचाई और विद्युत्-उत्पादन के विकास पर व्यय करने का निश्चय किया गया था।

जनसंख्या आयुक्त ने जोत की भूमि में वृद्धि सिंचाई के साधनों का विकास और अच्छी खाद के उपयोग आदि के परिणाम का सतर्कतापूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् यह अनुमान किया कि १९८१ में २ करोड़ ४० लाख टन की वृद्धि होगी। यह वृद्धि १९७१ के पहले की ही हमारी आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर सकती। १९६९ तक हमारी आबादी ४५ करोड़ हो जायगी। इस वृद्धि से हम केवल ४५ करोड़ व्यक्तियों को ही भोजन दे सकते हैं। १९६९ तक हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकेंगी और हम चौथी पंचवर्षीय योजना की तैयारी में रहेंगे।

भूमिसुधार और आत्मनिर्भरता

उपर्युक्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह विदित होगा कि जिस प्रकार आबादी में अनियंत्रित वृद्धि हो रही है उससे हमारी सारी योजनाएँ व्यर्थ हो जायंगी, जब आबादी ४५ करोड़ से भी बढ़ने लगेगी।

तो इस चुनौती को हम कैसे स्वीकार करें ?

अपने विश्लेषण में जनगणना आयुक्त ने यह मान लिया है कि भूमि-स्वामित्व और उसके प्रबंध के स्वरूप के परिवर्तन से कृषि-उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उनका कथन है[2] :

"भूमि सुधार के किसी भी कार्य से कृषि के यांत्रिक पक्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता.....।"

सहकारी खेती, सामूहिकता, भूमि का पुनर्वितरण आदि को हमें पानी, खाद और अच्छे बीज की श्रेणी में नहीं रखना है और न इनके उपयोग के द्वारा उत्पादन के लक्ष्य में वृद्धि की ही संभावना है।

[1] सेंसस ऑव् इंडिया रिपोर्ट पृ० १९४।
[2] सेंसस ऑव् इंडिया १९५१, पृष्ठ २०६

किंतु यह प्रश्न को संकुचित दृष्टि से देखना है। भूमि-सुधार और भूमि-प्रबन्ध के परिवर्तन का कृषि-उत्पादन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा, यह कहना इतिहास को गलत ढंग से पढ़ना है। एक दूसरे अध्याय में हमने यह बतलाया है कि लेनिन ने भी कृषि-उत्पादन की वृद्धि के लिए व्यक्तिगत भूमि-स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक खेती चलाई थी। रूस में कृषि-अर्थ-व्यवस्था संबंधी क्रांति से कृषि-उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि का मुख्य कारण सामूहिक खेती ही है। भारतवर्ष रूस के भूमिसुधार इतिहास से शिक्षा ग्रहण कर सकता है। धीरे धीरे सामूहिक खेती को अपनाकर वह भी कृषि-क्रांति कर सकता है। रूस में यही हिंसा और खून-खराबी के द्वारा हुआ, भारतवर्ष में भूदान आंदोलन भूमि-स्वामित्व की भावना को मिटा रहा है। इस प्रकार स्वेच्छा से प्राप्त भूदान के द्वारा सामूहिक खेती का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

१३ नवंबर १९५१ को विनोबा जी योजना-आयोग के सदस्यों और उसके अध्यक्ष प्रधान मंत्री से मिलने दिल्ली आए। योजना-आयोग से उनका दो मुख्य बातों में मतभेद था, जिसमें एक का संबंध खाद्य में आत्मनिर्भरता से था और दूसरे का सबको रोजगार देने से। खाद्यान्नों के आयात करने पर विनोबा जी को आपत्ति थी। विनोबा जी ने कहा :

"मुख्य प्रश्न तो भोजन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता का है। मुझको विश्वास था कि इस संबंध में जो वादा किया गया था उसे पूरा किया जायगा। इस बीच खाद्यमंत्री ने खाद्य के संबंध में कुछ वक्तव्य दिए। उन्होंने प्रतिज्ञा को दुहराया, किंतु कहा कि इसमें अनेक परिस्थितियाँ और अपवाद हैं, मतलब कि प्रतिज्ञा का कुछ भी बच नहीं रहा। वे शर्तें और अपवाद ऐसे हैं, जिन्होंने परिस्थिति को और गंभीर बना दिया है, इसलिये मैंने इस विषय पर टीका-टिप्पणी की। मुझको जवाब भी मिला पर मैं उससे संतुष्ट नहीं हूँ। मैंने फिर लिखा : मुझको तो अब आश्चर्य होता है कि कहीं विशेषज्ञों ने इस सिद्धांत का परित्याग तो नहीं कर दिया कि खाद्यान्न का आयात बंद कर दिया जाय। मुझको तो यह भी आश्चर्य है कि कहीं व्यापारिक कारणों से तो यह निश्चय नहीं किया गया है कि अब देश को खाद्यान्न में आत्म-निर्भर होने की जरूरत नहीं है—यद्यपि हमारा देश कृषिप्रधान ही है।"

यद्यपि विनोबा जी ने यह नहीं बतलाया कि किन साधनों से वे देश को आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं, किंतु उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि पंचवर्षीय

योजना का उद्देश्य हो कि देश में खाद्यान्नों का आयात एकदम बंद कर दिया जाय।

मतभेद की दूसरी बात सबको रोजगार देने के संबंध में थी, विनोबा के शब्दों में :

"दूसरे मैं चाहता था कि ऐसी नीति अपनाई जाय जिससे सबको रोजगार मिले। योजना-आयोग इसे अपना कर्तव्य मानने के लिए राजी है, किंतु उसका कहना है कि वह वर्तमान परिस्थितियों में कुछ नहीं कर सकता। मेरी राय में बिना इसके कोई राष्ट्रीय योजना बन ही नहीं सकती। जब वे इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेंगे तभी गाँवों का विकास कर सकते हैं। और गाँवों को आत्मनिर्भर बना सकते हैं।"

योजना-आयोग के सदस्यों को विनोबा जी इन दो प्रश्नों पर नहीं समझा सके और यहीं से दोनों के रास्ते अलग अलग हो गए। कारण, विनोबा के शब्दों में "उनके दृष्टिकोण और मेरे दृष्टिकोण में अंतर है यद्यपि वे भी देश के हित में ही सोच रहे हैं।"

खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता सामूहिक खेती से ही आ सकती है जो कृषि के क्षेत्र में भूदान के माध्यम से क्रांति पर ही निर्भर करता है।

नवम अध्याय

नई समाज-व्यवस्था

भारतवर्ष में आर्थिक प्रगति राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी धार्मिक या सामाजिक संस्थाओं के कारण अवरुद्ध थी [1]। क्षिप्र आर्थिक प्रगति तब तक संभव नहीं है जब तक जीवन के प्रति जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन न हो। यह तो क्रांति से हो सकता है या सामाजिक और आर्थिक मूल्यों के पुनर्निर्धारण से। क्रांति का मार्ग विध्वंसात्मक होता है, जो राष्ट्र के जीवन के संपूर्ण ढाँचे को तितरबितर कर देता है। किंतु शीघ्र आर्थिक प्रगति तो सर्वदा कष्टप्रद मार्गों से होकर गुजरती है। पुराने दर्शनों को तिलांजलि देनी पड़ती है। पुरानी सामाजिक संस्थाओं का विघटन होता है, जाति, धर्म और नस्लों के बंधन तोड़ने पड़ते हैं और ऐसे पर्याप्तसंख्यक व्यक्ति जो प्रगति के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकते, उनकी सुखमय जीवन संबंधी आशाओं पर पानी फिर जाता है[2]। इसी प्रकार वर्गों के विशेषाधिकार, आय और संपत्ति में असमानता तथा आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का एक संकुचित वर्ग के हाथों में केंद्रीकरण; देश के क्षिप्र आर्थिक विकास के लिए इन सब में परिवर्तन आवश्यक है। समाज को इन सब के लिए पूरा पूरा मूल्य चुकाना पड़ता है। चाहे वह क्रांति के मार्ग से हो चाहे कष्टप्रद विकास के मार्ग से। चुनाव उसके सामने रहता है और उसे चुनाव करना ही पड़ता है। इसी प्रकार क्षिप्र आर्थिक प्रगति के लिए कुछ लोकतंत्रों को भी अधिनायकवादी शासन स्वीकार करना पड़ा। अन्य स्थितियों में राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एकदम उलटपुलट हो गया। यह इतिहास का सबक है और उससे कोई छुटकारा नहीं है। सभी अविकसित देशों को मूल्य चुकाना पड़ता है। सबसे कम मूल्य जो वे दे सकते हैं, वह यही हो सकता है कि वे अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में राष्ट्र की तेजी से बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन कर लें।

[1] देखिए प्रथम अध्याय।

[2] विस्तार के लिये देखिए मेजर्स फॉर इकनामिक डेवलपमेंट ऑव् अंडरडेवलप कंट्रीज, यूनाइटेड नेशंस १९५१ न्यूयार्क पृ० १५।

विनोबा बिना हिंसा के संपूर्ण सामाजिक ढांचे में परिवर्तन करना चाहते हैं। वे शांति और क्रांति दोनों चाहते हैं। भूदान के द्वारा जनता को सत्याग्रह की शक्ति मिलेगी और मानवता में उसका विश्वास बढ़ेगा। इससे भारतीय भूमि-व्यवस्था में क्रांति होगी। इस दृष्टि से भूदान के कार्य का विशेष महत्त्व है।

बिहार के मुंगेर जिले की एक प्रार्थना-सभा में भाषण करते हुए विनोबा जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि भूदान युग की मांग है। उनके शब्दों को जरा ब्योरे से देना पड़ेगा :

"राजाओं के दिन गए वैसे ही जमींदारों के भी। वर्तमान काल में न तो राजाओं की जरूरत है और न जमींदारों की। भावी संसार जनता का होगा। अबसे उसीकी आवाज प्रधान है। दुनिया के क्रियाकलापों में जनता का उदय इस बात को सूचित करता है कि वर्तमान युग समता की मांग कर रहा है। समता जैसी मित्रों के बीच होती है। समाज के विभिन्न व्यक्तियों के बीच संबंध का आधार यही साथियों का सा प्यार होना चाहिए.....सेवा नहीं बल्कि हार्दिक मित्रता उसका आदर्श है। इसका यह अर्थ नहीं कि जो आदरभाजन हैं उनका आदर नहीं होगा। गुणों का निश्चय ही समादर होगा। किंतु विभिन्न व्यक्तियों के बीच के संबंध महत्त्वपूर्ण ऐक्य-वाले ही होंगे।

विनोबा ने आगे कहा "हमें अपने समाज का निर्माण युग की मांग के अनुरूप करना है। हाँ, मान लेना चाहिए कि पुराने मूल्य पुराने रूप में आगे नहीं चल सकते, जो मूल्य और मान्यताएँ उस समय थीं जब तुलसी-दास जी ने रामायण लिखी थी वे आज स्वीकृत नहीं हो सकतीं। उन दिनों ब्राह्मण जन्म से ही श्रेष्ठ समझा जाता था किंतु आज वह उस श्रेष्ठता को अपने अधिकार के रूप में नहीं मांग सकता। अवश्य ही हम केवल गुणों का आदर करेंगे। वे चाहे जहां मिलें किंतु प्रत्येक दशा में हमारे संबंधों का आधार समानता ही होगी।

"जो समय की गति के साथ चलने से इन्कार करते हैं उनकी हार ही नहीं हानि भी होती है। पिछले मानदंडों का कोई व्यक्ति चाहे कितना ही बड़ा हो बदली हुई परिस्थितियों में, जिनमें हम आज रह रहे हैं, उसकी पुरानी आदतों और तौर-तरीकों से यदि बड़प्पन की बू आती है तो उन्हें कोई बर्दाश्त नहीं करेगा।

"भूदान युग की ही मांग का प्रतिनिधित्व करता है। यह मेरा आविष्कार नहीं है। मैं चाहता हूँ कि कार्यकर्तागण यह संदेश जनता तक ले जायँ। उनका काम केवल भूमि एकत्र करना नहीं है। वे जनता को समझाएँ कि आज का युग भाईचारे और प्रेम-भाव का युग है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनको इस यज्ञ में सफलता मिलेगी।"

विनोबा एक नए समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जिसे वे साम्य योग कहते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए उनका कथन है--

साम्ययोग के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में एक ही आत्मा का निवास है अतः वह मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं करता। यही नहीं वह मानता है कि मनुष्य की आत्मा और अन्य जीव-जंतुओं की आत्मा में अंतिम रूप से कोई भेद नहीं है।

"आज तक लोगों ने अपने को उस धन का स्वामी समझा है जो पास रहा है इससे विभिन्न गुटों में स्वार्थ का संघर्ष हुआ है। मैं समाज के दिल में उस धन के व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना को बदलना चाहता हूँ। एक बार यदि हम ट्रस्टीशिप के आदर्श को स्वीकार कर लें तो हमारी विचारधारा में परिवर्तन हो जाय। धन के संबंध में हमारा आदर, व्यक्ति व्यक्ति के बीच संबंध और व्यक्ति और समाज के बीच संबंध सभी कुछ बदल जाय। हमारे पास जो कुछ भी है वह समाज की सेवा के लिए है। वह हमारे संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए नहीं है। सचमुच यदि हम गंभीरतापूर्वक विचार करें तो अपना स्वार्थ भी समाज के लिए उत्सर्ग में ही सिद्ध होता है। जनता का यह नैतिक उत्थान जो साम्ययोग ले आता है यह उसकी विशेषता है।

"आर्थिक क्षेत्र में साम्ययोग के अनुसार प्रत्येक गाँव अपने में एक राज्य होगा। केंद्र का आधिपत्य उसपर केवल नाममात्र होगा। इस प्रकार धीरे धीरे हम एक ऐसे स्तर पर पहुँच जायँगे जब अधिकार चाहे वह किसी रूप में हो, अनावश्यक हो जायगा और धीरे धीरे वह स्वयं एक संपूर्ण मुक्त समाज को जन्म देकर तिरोहित हो जायगा।"

तंत्र-मुक्त समाज

राजनीतिक रूप में साम्ययोग समान रूप से क्रांतिकारी परिवर्तन लायगा। विनोबा का कथन है—हम एक ऐसे समाज का निर्माण करना

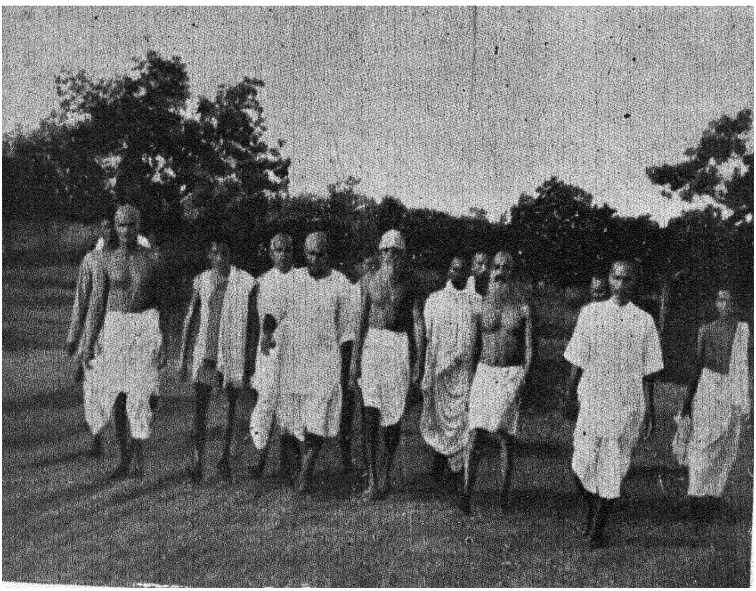

विनोबा जी की भूदान यात्रा

चाहते हैं जो न केवल शोषण से मुक्त होगा, बल्कि सारे सरकारी अधिकारों से भी। सरकार की शक्ति का विकेंद्रीकरण होकर गावों में उसका विभाजन होगा। प्रत्येक गाँव अपने में एक राज्य होगा। केंद्र का अधिकार उसपर नाममात्र का होगा। इस प्रकार धीरे धीरे हम एक ऐसी स्थिति पर पहुँच जायँगे जब अधिकार, चाहे वह किसी रूप में हो, अनावश्यक हो जायगा और वह एक संपूर्ण स्वतंत्र समाज को जन्म को देकर तिरोहित हो जायगा।

यह है वह सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था, जिसका निर्माण विनोबा करना चाहते हैं। यह जातिगत और धर्मगत विभेदों का विनाश करती है। यह धनी-निर्धन, भूमिपति और भूमिहीन के भेद को मिटाती है। इसका उद्देश्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर एक वर्ग-विहीन समाज का निर्माण करना है। हिंसा से नहीं बल्कि हृदय-परिवर्तन और सही विचारधारा के द्वारा।

भूदान से विनोबा को संपत्तिदान का विचार मिला। विनोबा ने कहा था[1], "मेरा पहला पग भूदान था। अगला पग होगा संपत्तिदान। अब मैं एक तीसरा डग लूँगा, जिसमें दरिद्रनारायण के लिये अपने सर्वस्व का दान और बदले में गरीबी को स्वीकार करना होगा। सभी भगवान के दिए हुए धन का समान रूप से उपयोग करें।"

पटने में विनोबा ने सर्वप्रथम संपत्तिदान के विचार का उल्लेख किया था। चांडिल में संपत्तिदान की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा[2]—"भूदान के साथ साथ मैंने हाल में एक दूसरा कार्यक्रम भी बनाया है—संपत्तिदान। भूदान-यज्ञ की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है। आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक समानता के उद्देश्य में हम तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक संपत्तिदान को सफल न बनाएँ। मैं इसे प्रारंभ से ही जानता था। किंतु मैंने उस सिद्धांत का अनुकरण किया जो कहता है कि जड़ को सँभालो। शाखाएँ तो अपने आप निकल आएँगी। भूमि की समस्या अन्य समस्याओं से अधिक मौलिक थी। हमने केवल भूदान-यज्ञ का काम किया और अब तक हमारा मुख्य कार्य वही है। किंतु जब मैं बिहार आया और बड़े पैमाने

[1] सुरेश राम भाई विनोबा एंड हिजमिशन, सेवाग्राम वर्धा। १९५४ पृ० २०८।
[2] वही पृ० १८७

पर इस प्रांत की भूमि-समस्या को हल करने का हमने निश्चय किया तो ऐसा अनुभव हुआ कि अब संपत्तिदान प्रारंभ करने का समय आ गया है।"

विनोबा जी ने महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप दिया है। भूदान और संपत्तिदान-यज्ञ के द्वारा बिनोबा जी ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वामित्व की निरंकुशता से मुक्ति दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया है और धन और अधिकार की भूख को शुद्ध किया है। भूदान और संपत्तिदान के माध्यम से उन्होंने समाज को व्यक्ति से ऊपर प्रतिष्ठित किया है। अंत में भूदान फल के अर्थशास्त्री को आर्थिक अन्वेषण के लिए एक ऐसा यंत्र दे रहा है, जिससे उसे मूल्यों के यांत्रिक पचड़ों में न पड़ना होगा। जब हम अपना ध्यान ऐसे आर्थिक ढाँचे की ओर ले जाते हैं तो बरबस हमें ध्यान हो आता है कि इस प्रकार की अर्थव्यवस्था की समस्याएँ वर्तमान अर्थ-व्यवस्था की समस्याओं की भाँति एकदम न होंगी। भूदान के अर्थशास्त्र की मौलिकताओं का दिग्दर्शन कराने का यह अवसर नहीं है। इतना ही इंगित करना पर्याप्त होगा कि यह प्राचीन परंपराओं से मौलिक मतभेद रखता है। क्योंकि उसका मानदंड संपत्ति नहीं है।

दशम अध्याय

भावी कृषि का ढाँचा

भूदान आंदोलन के वैज्ञानिक परीक्षण के सिलसिले में यह आवश्यक हो जाता है कि हम भावी कृषि-अर्थशास्त्र के ढाँचे का परीक्षण करें। क्योंकि इसी संदर्भ में हम भूदान की प्रशंसा या निंदा कर सकते हैं। ऐसी अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए :

१—ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जो देश की भूमि की उत्पादनशक्ति की वृद्धि, कृषि के उपायों और साधनों में उन्नति तथा किसानों में कृषि के ज्ञान के स्तर को ऊँचा करके उत्पादक वस्तुओं के विकास के अनुकूल हो।

२—कृषि-भूमि के संरक्षित कोश का निर्माण।

३—कृषि के साथ साथ अन्य संबद्ध व्यापारों का विकास तथा शाक-भाजी की खेती, फलों का उत्पादन, दुग्ध-शालाओं का निर्माण आदि आदि।

४—कृषि-निर्भर जनसंख्या का बेहतर बँटवारा करना, किसानों में जमीन के बंटवारे का आधार समानता और काम करने की क्षमता हो।

५—एक ऐसी कृषि व्यवस्था का विकास जो मजदूरी और उत्पादन दोनों दृष्टियों से लाभकर हो ताकि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का संक्रमण काल लाया जा सके। संक्षेप में नीति का उद्देश्य कृषि-समाज के समाजवादी ढाँचे का निर्माण होना चाहिए। पुस्तक के पिछले पृष्ठों में दिए गए भूदान आंदोलन के वर्णन से यह प्रगट हो गया कि उसके द्वारा भारतवर्ष में उपर्युक्त उद्देश्यों में अधिकांश की पूर्ति हो सकती है। भूदान आंदोलन भूमि की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करनेवाली शक्तियों को प्रोत्साहन देता है और वह वर्तमान कृषि-संगठन के ढाँचे को बदलना चाहता है। उसने बहुत पहले ही कृषि-भूमि का एक बड़ा संरक्षित कोश बना लिया है, जो भूदान-काश्तकारों के निर्माण में सहायक हो रहा है। इसके अतिरिक्त भूदान में प्राप्त भूमि के वितरण का आधार समानता और किसानों की कार्य-

चमता है। इन सब के ऊपर भूदान-आंदोलन से जिस कृषि के ढाँचे का निर्माण होगा वह समाजवादी भूमि अर्थव्यवस्था की आधारशिला बनेगी।

ऐसी अर्थव्यवस्था जो ऊपर की विशेषताओं से उद्भूत होगी वह भारतीय भूमि में ही उत्पन्न होनी चाहिए। कहीं विदेश से उसका आयात नहीं हो सकता। अतः इस प्रकार की अर्थव्यवस्था पर कोई राजनीतिक मुहर लगाना खतरनाक और निश्चय ही देशद्रोहपूर्ण कार्य होगा। भारतवर्ष में सहकारी आंदोलन का इतिहास इस दिशा में शिक्षा दे रहा है। इस आंदोलन की मंद प्रगति का एक मुख्य कारण यह था कि राइफेसेन (Raiffesen) और शुल्त्स डेलिश (Shulze Delitzch) आंदोलन विदेशी भूमि से आयात किए गए थे। रूसी या अंग्रेजी कृषिअर्थव्यवस्था की कलम भारतीय जलवायु में लगाना अनुपयुक्त होगा। भारतवर्ष को अपनी भावी कृषि-अर्थव्यवस्था का देशी ढंग से विकास करना चाहिए।

फिर भावी कृषि अर्थव्यवस्था कोरी तख्ती पर नहीं लिखी जा सकती। उसका निर्माण भारतवर्ष के गांवों की राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के आधार पर ही होगा। कर तो व्यवहार में विभिन्न प्रकार की स्थितियों के बीच एक समझौता है। भावी कृषि-अर्थव्यवस्था निश्चय ही भारतवर्ष में कार्यशील विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के बीच एक समझौते का परिणाम होगी। कोई कृषि-अर्थव्यवस्था जिसके ढाँचे का देश की किसान जनता राजनीतिक विरोध करे उचित नहीं हो सकती। इसलिये देश को उसकी जरूरत नहीं। योजना की व्यावहारिक प्रयोग में सफलता भावी कृषि-अर्थव्यवस्था के ढाँचे के निर्माण में पूरा हाथ रखती है। अंतिम बात यह है कि कोई भी योजना शक्ति और हिंसा के द्वारा नहीं लादी जा सकती। संविधान की धाराओं के अंतर्गत ही उसे काम करना है।

कृषिव्यवस्था के विभिन्न प्रकार

समाजवादी कृषि-कार्यक्रम का परीक्षण संसार के विभिन्न भागों में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कृषि-व्यवस्थाओं के संदर्भ में किया जा सकता है। ऐसी चार व्यवस्थाएँ प्रमुख हैं। वे निम्नलिखित हैं :

१—राजकीय कृषि

२—व्यक्तिगत कृषि

३—सहकारी कृषि

४—सामूहिक कृषि

प्रारंभ में ही यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में ये चारों प्रकार के ढाँचे साथ साथ चल सकते हैं। एक की उपस्थिति दूसरे के अस्तित्व के लिये बाधक नहीं है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ नाना प्रकार की भूमि-व्यवस्थाएँ और स्थितियाँ है चारों प्रकार के ढाँचों पर प्रयोग होना चाहिए।

राजकीय कृषि के अंतर्गत सरकार द्वारा खेती होती है, किसान मजदूर होते हैं उन खेतों में जिनका स्वामित्व सरकार के हाथ में होता है इस प्रकार की खेती होती है। राजकीय कृषि के पूर्व भूमि का पूर्व राष्ट्रीकरण आवश्यक है। यह सर्वदा आसान काम नहीं होता।

सरकारी कृषि के अंतर्गत भूमि के उपयोग का सबसे बहुमूल्य अनुभव आस्ट्रेलिया में हुआ है, जहाँ विशाल अतिरिक्त भूमि पड़ी हुई है और कृषि पर आधृत जनसंख्या बहुत कम है। भूमि-उपयोग और क्षेत्र-बंदोबस्त की तीसरी रिपोर्ट में राजकीय क्षेत्रों के संबंध में कहा गया है :

आस्ट्रेलिया में मान्यता-प्राप्त राजकीय क्षेत्रों का प्राथमिक उद्देश्य प्रायः उनका सामान्य रूप में उत्पादन की इकाई रूप में विकास नहीं होता। बल्कि उनका ध्यान अधिकतर प्रयोग और अनुसंधान तथा नए साधनों पर प्रयोग होता है। यह ठीक है कि उनकी उपज भी बाजार में बेची जाती है। किंतु यह उपज विशेषकर शुद्ध बीज, पौधों के नए बीज और अच्छी नस्ल के घोड़े-घोड़ियों के रूप में ही होती है। एक दो ऐसे भी उदाहरण हैं, जहाँ राज्य ने सामान्य बाजारों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृषिक्षेत्र चलाए, पर ऐसे उद्योग कम ही सफल हुए हैं। दूसरे देशों में भी प्रायः ऐसे ही अनुभव रहे। अर्थात् ऐसे कृषिक्षेत्र जो किसी एक उद्योग के लिये किसी विशेष सेवा का कार्य करते हैं। डेनमार्क के फार्म जो दुग्धशालाओं के लिये गाएँ पालते हैं) वे सफल होते हैं। ऐसे क्षेत्र जिनका एकमात्र उद्देश्य संभरण होता है वे प्रायः पूर्ण सफल नहीं हैं।

राजकीय कृषिक्षेत्रों का मुख्य उद्देश्य प्रदर्शन और शोध तक सीमित होना चाहिए। भारत का किसान अपने कार्य में जितना माहिर है उस दृष्टि से भूतकाल में प्रदर्शन केंद्रों के रूप में भी राजकीय कृषि-फार्मों ने यहाँ अपनी उपयोगिता सिद्ध नहीं की है।

भूदान-आंदोलन राजकीय कृषि-फार्मों में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकते, क्योंकि इस आंदोलन का आधार ही दूसरा है।

व्यक्तिगत सरकारी और सामूहिक कृषि के अपने लाभ हैं। विभिन्न आर्थिक परिस्थितियों में इनमें से प्रत्येक सफलतापूर्वक और लाभ के साथ चल सकता है। मोटे तौर पर निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर कृषि के ढाँचे के चुनाव की परीक्षा की जा सकती है।

१—देश में उत्पादन के विभिन्न तत्त्वों का योग और उनका उपयोग २—सम्पत्ति के अधिकार की भावना और ३—विकास और छोटी जोत की भूमि-इकाई की अर्थव्यवस्था।

किसी किसी देश में कृषि का प्रकार कैसा होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ उत्पादन के तत्त्व कैसे हैं। घनी आबादीवाले अर्द्ध अविकसित देश में स्वभावतया जोत की भूमि की इकाई छोटी होगी और किसान जो ऐसी अलाभकर भूमि में खेती करेंगे, उनकी संख्या भी अधिक होगी। अल्प जनसंख्यावाले देशों में जहाँ पर्याप्त भूमि है वहाँ जोत की भूमि की इकाई बड़ी होगी और किसान बड़े बड़े कृषि-क्षेत्रों से संबद्ध होंगे। सिद्धांत रूप में यह प्रश्न यह है कि उत्पादन के साधनों के अनुपात का संयोग किस प्रकार किया जाय कि अधिक से अधिक लाभ हो। भारतवर्ष में जहाँ मानव-शक्ति रूप से अधिक है हमें श्रम को पूँजी, भूमि और संघटन से अधिक महत्त्व देना होगा। अमेरिका में भूमि पूंजी और संघटन का कृषि में श्रम से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान भारतीय कृषि-अर्थनीति का आधार मानव-शक्ति का अधिकतम उपयोग है।

उत्पादन के इन तत्त्वों के भारत में संयोग की भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं। भूमि, पूँजी और संघटन पर श्रम को अधिक महत्त्व देने से कृषि-उत्पादन की कुशलता घटती है। उत्पादन के अन्य तत्त्वों के बदले से श्रम के उपयोग का फल अन्य कृषिप्रधान देशों में शायद ही कभी घनी खेती के रूप में हुआ हो। मानवीय शक्ति का जानवरों के स्थान पर भी खेती के विभिन्न कार्यों में जैसे कुएँ से पानी निकालना, हल जोतना, खेती काटना आदि आदि में उपयोग होता है। कृषि-अर्थशास्त्र में ह्रासमान नियम (The Law of return) हमें यह सिखलाता है कि एक निश्चित सीमा के बाद जब उत्पादन के एक तत्त्व के उपयोग को चरम सीमा उपलब्ध हो जाती है तो

यदि उस तत्त्व का अन्य तत्त्वों के विरुद्ध उपयोग शुरू होता है तो सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम (The law of diminishing utility) शुरू हो जाता है। भारतीय कृषि-अर्थशास्त्र संप्रति इसी स्थिति से गुजर रहा है क्योंकि उत्पादन के अन्य तत्त्वों की उपेक्षा करके यहाँ उत्पादन में श्रम का ही अधिकतम उपयोग किया गया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के खिलाने के लिये अधिक अन्न उपजाने के हेतु आज उत्पादन के तत्त्वों के अनुपात में परिवर्तन की स्पष्ट आवश्यकता है। उत्पादन के तत्त्वों में कम से कम दो तत्त्व ऐसे हैं जो राज्य के नियंत्रण के बाहर हैं :

१—भूमि—प्रति व्यक्ति जोत की भूमि की इकाई केवल २. २५ एकड़ है और कृषि-योग्य भूमि अभी और कम है।

२—मजदूरों की संख्या तेजी से बढ़ रही है और १९८१ तक यह ५६ करोड़ हो सकती है।

भावी कृषि-अर्थव्यवस्था का ढाँचा जिसे हम देख रहे हैं उसमें भूमि और श्रम से संपत्ति और संघटन को और अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि में पूंजीविकास पर सबसे अधिक महत्त्व दिया गया था। किंतु योजना के कार्यान्वय में कृषि-संगठन-व्यक्तिगत से सहकारी, सहयोगी—में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

उत्पादन के तत्त्वों के महत्त्व में परिवर्तन तभी संभव है जब भूमि की स्वामित्व की भावना में परिवर्तन हो। सामूहिक खेती या तो क्रांति से होगी या विकास के द्वारा, जब जनता स्वयं अपनी इच्छा से सामूहिक खेती के लिये अपनी भूमि दे दे। १९१९ से सोवियत आर्थिक विकास यह बतलाता है कि किस प्रकार कष्टदायी प्रक्रिया से सामूहिक खेती प्रारंभ की गई। भारतवर्ष में भूदान-आंदोलन धीरे धीरे राष्ट्र को बड़े पैमाने पर भूमि से स्वामित्व की भावना मिटाकर सामूहिक खेती के लिये तैयार कर रहा है।

सहकारी और सामूहिक खेती

सामूहिक खेती का आधार विस्तृत उत्पादन का अर्थशास्त्र है। घने बसे हुए देशों में जहाँ भूमि की कमी है एक स्थिति अवश्य आएगी जब छोटी खेती से विस्तृत खेती की प्रवृत्ति होगी। उत्पादन की इकाई का श्रेष्ठ

आकार तभी प्राप्त होगा जब किसानी खेती के स्थान पर सामूहिक खेती की जाय। वर्तमान काल में भूमि के जो इतने छोटे छोटे अलाभ-कर टुकड़े हो गए हैं उनसे यही प्रकट होता है कि अच्छी आकार की कृषि की इकाई भारतीय कृषि में नहीं है। व्यक्तिगत कृषि में यद्यपि लाभ हैं किंतु इसमें श्रम, पूंजी और भूमि का अपव्यय होता है। श्रेष्ठ ढंग की खेती तभी संभव है जब वर्तमान कृषि का ढाँचा व्यक्तिगत से बदलकर सहकारी कृषि की स्थिति से होते हुए सामूहिक खेती हो। हमारे देश में भावी कृषि-अर्थव्यवस्था के ढाँचे के विकास में सहकारी खेती की मध्यवर्ती स्थिति हो सकती है। रूसी कृषि-व्यवस्था के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि सारी क्रांति की सफलता भूमि के समाजीकरण के द्वारा सामूहिक खेती पर निर्भर थी। आरंभ में क्रांति को सफल बनाने के लिये किसानों को यद्यपि आश्वासन दिए गए थे तथापि लेनिन ने बोलशेविक विचार को गुप्त नहीं रखा था कि समाजवाद की सफलता के लिये विस्तृत कृषि-कर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।प्रावदा में लेनिन ने लिखा था :

"हम यह बात किसानों और उससे अधिक सर्वहारा और अर्द्ध सर्वहारा से नहीं छिपा सकते कि अल्प पैमाने की खेती, जब तक खरीद-फरोख्त के बाजार और पूंजीवाद हैं तब तक मानवता को व्यापक गरीबी से मुक्ति नहीं दिला सकती।"

समाज के विकास के लिए विस्तृत कृषि कर्म की ओर बढ़ने के विषय में विचार करना आवश्यक है। इस काम में तुरंत हाथ लगाने के लिये जनता को तैयार करना होगा और उपयुक्त साधनों के प्रयोग द्वारा किस प्रकार इस संक्रांति को व्यवहारिक बनाया जा सकता है यह जनता से ही सीखना होगा।

लेनिन की नीति का उपर्युक्त उद्देश्य क्रांति के उस प्रथम चरण में सिद्ध नहीं हो सकता था। क्योंकि किसानों का दृष्टिकोण कृषि के ढांचे में ऐसे मौलिक परिवर्तन के विरुद्ध था। १९१८ में लाल सेना के लिए खाद्यान्न जुटाने में कठिनाई हुई और इससे सोवियत निश्चय ने एक नई दिशा ले ली जिसका उद्देश्य विस्तृत खेती का विकास था जो लेनिन की नीति का अत्यंत प्रारंभ से ही मौलिक उद्देश्य था। किंतु विस्तृत खेती तब तक संभव नहीं थी जब तक व्यक्तिगत खेती रहती। यही प्रारंभ है सामूहिक खेती का। तीन प्रकार से सामूहिक खेती का विकास हुआ। (१) पहले से ही कुछ सोवियत कृषि-क्षेत्र थे जहाँ बाजार के लिये चीजें जैसे गन्ना और पाट आदि चीजों की खेती होती थी, जिनके लिये विशेष प्रकार के संगठन, पूँजी या

कुशलता की आवश्यकता होती थी जो व्यक्तिगत किसानों में आसानी से उपलब्ध थे। (२) दूसरे कृषिसमूह वे थे जहाँ मजदूर एकत्र होकर अविभाजित भूमि में खेती करते थे और उपज आपस में बाँट लेते थे। (३) तीसरे कृषि आर्टेल थे[१] जिनमें सामूहिक खेती में केवल वे ही चीजें उत्पादित की जाती थीं, जिनका बाजार के लिए उपयोग होता था। सामूहिक खेती को बड़े पैमाने पर जनता में लोकप्रिय बनाना कठिन था। कृषिसमूहों के विकास के लिए लेनिन को जीतोड़ परिश्रम करना पड़ा। १९१८ में उसने कृषि के समाजीकरण की महत्त्वपूर्ण घोषणा की तथा एक बार फिर दुहराया कि क्रांति का भविष्य व्यक्तिगत कृषि-फार्मों को समाजवादी भूमि-व्यवस्था में परिवर्तित करने पर ही निर्भर करता है। लेनिन ने बड़े साहस से कहा था :

हम भली प्रकार जानते हैं कि ऐसी महान क्रांतियाँ, करोड़ों व्यक्तियों के जीवन और उनके अस्तित्व की नींव को स्पर्श करती है व्यक्तिगत खेती से सामूहिक खेती की स्थिति एक लंबे कार्यक्रम के पश्चात् ही आ सकती है और तब जब आवश्यकता जनता को अपने जीवन में परिवर्तन करने को बाध्य करती है।

अखिल रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति ने सामूहिक खेती के अपने प्रथम साधिकार के निर्णय की घोषणा में कहा था कि सभी प्रकार की व्यक्तिगत खेती आदि को संक्रांतिकालीन और गत युग की बात समझना चाहिए। सामूहिक खेती का मौलिक उद्देश्य संपूर्ण रूस के लिए एक उत्पादक अर्थनीति घोषित किया गया, जिसमें जनता के कम से कम श्रम से अधिक से अधिक उत्पादन हो।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामूहिक खेती की तत्काल कोई स्पष्ट प्रगति नहीं हुई। १९१८ में सामूहिक कृषि फार्मों की संख्या ३१०० थी। १९१९ में ३५०० और १९२० में ४४०। अधिकांश कृषि-क्षेत्र अत्यंत छोटे आकार के थे। सबसे महत्त्वपूर्ण वृद्धि आर्टेलों की संख्या में हुई, जिनकी संख्या १९१९ में १९०० थी और १९२० में ३८०० हो गई। किसानों की ओर से विस्तृत कृषि-उत्पादन की दिशा में यह अनिच्छा बोलशेविक नीति की करारी

[१] उपर्युक्त कथन का आधार ई० एच० कार लिखित बोलशेविक रिवोल्यूशन १९१९–२३ खंड २ मैकमिलन १९५२ है।

हार थी। फिर भी अत्यंत प्राचीन रूसी कृषि के ढंग को सहकारी या सामूहिक खेती के माध्यम से विस्तृत खेती की दिशा में परिवर्तन करने की ओर दृढ़ प्रयत्न किए गए। सच तो यह है कि सारा औद्योगिक कार्यक्रम कृषि अर्थ-नीति के ढाँचे में परिवर्तन पर ही निर्भर करता था। पृष्ठभूमि में १५ वीं कांग्रेस की रिपोर्ट में स्तालिन ने लिखा :

"रास्ता यह है कि छोटे और बिखरे हुए किसानों के खेतों को विस्तृत और संगठित कृषि-क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया जाय, जिसमें सभी खेती करें। नए उच्च तरीकों से जमीन में सामूहिक खेती हो। रास्ता यह है कि छोटे छोटे और बौने किसानों के खेतों को धीरे धीरे पर निश्चित रूप से एकत्र कर दिया जाय। किसी जोर और दबाव से नहीं बल्कि उन्हें समझा-बुझाकर। बड़े बड़े कृषि-फार्म बनाने के लिये राजी कर लिया जाय, जिनका आधार सामूहिक सहकारी खेती हो। खेती में कृषि के यंत्र और ट्रैक्टर इस्तेमाल में लाए जायँ और वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाय। इसके अतिरिक्त और दूसरा रास्ता नहीं है।"

नई अर्थनीति की आधारशिला बड़े पैमाने पर सहकारी उत्पादन था।

उपर्युक्त नीति के फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना के अवसर पर स्वामित्व से विहीन एक नए रूसी गाँव का जन्म हो रहा था। प्रोफेसर दोब ने अपनी अपूर्व अनुकरणीय शैली में बड़े ढंग से कहा है--प्रजनन की पीड़ा कड़ी अवश्य थी, शुश्रूषा के लिए नियुक्त दाई भी शुष्क थी। किंतु वे कुछ महीने यूरोप और एशिया के बीसवीं शती के आर्थिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुए[1]।

इसके बाद की घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन इस पुस्तक के कार्य-क्षेत्र के बाहर है किंतु ध्यान देने की बात यह है कि १९३८ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में रूसी अर्थनीति इस योग्य थी कि उत्पादन के सामूहिक प्रकार के द्वारा विकासोन्मुख उद्योग और जनसंख्या दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

वर्तमान भारत की कृषि-अर्थनीति भूमि-सुधारों और जमींदारी-उन्मूलन के बावजूद स्वतंत्रतापूर्वक ढंग पर ही चल रही है, एकदम व्यक्तिवादी

[1] वही पृ० २२६।

उत्पादन के ढंग से आदिकालीन और आमूल अपरिवर्तनशील रूप में। ऐसी परिस्थिति में कृषि-उत्पादन अत्यंत अल्प है और यह हमेशा ऐसा ही बना रहेगा। क्षिप्र औद्योगीकरण और विकासोन्मुख जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति व्यक्तिगत ढंग की आदिकालीन अर्थनीति के द्वारा प्राप्त कृषि-उत्पादन से नहीं हो सकती। ग्रामीण अर्थनीति में शांतिपूर्ण क्रांति लाने के लिए दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आवश्यक है और यह विश्वास और साहस से ही हो सकता है। बिना उसके इतिहास का निर्माण नहीं होता।

विनोबा इतिहास का निर्माण कर रहे हैं उन्होंने भूदान आंदोलन के द्वारा कम्युनिज्म को पछाड़ दिया है। वे विश्व को प्रकाश दे रहे हैं कि किस प्रकार भूमि में स्वामित्व की भावना समाप्त करके एक नए समाज का निर्माण हो सकता है और यह है इस आंदोलन का असली महत्त्व। भूदान-आंदोलन के अहिंसात्मक स्वरूप का आधार हिंदू धर्म, संस्कृति और परंपरा है।